चन्दामामा
नवम्बर १९८५
2.50
RS

*"जिस दिन मुझे अपना पहला मुंहासा दिखाई दिया...
क्लिअरेसिल का मुझे उसी दिन पता चला."*

वो दिन मुझे आज भी याद है. दीदी की शादी को सिर्फ़ एक हफ़्ता रह गया था और मेरे मन में लड्डू फूट रहे थे. बस, शीशे के सामने खड़ी मैं अपने नये कपड़े पहन कर देख रही थी, कि मैं डर से कांप गई... मुझे अपने गाल पर कुछ दिखाई पड़ा ... एक मुंहासा. मेरा पहला पहला मुंहासा. मैं घबरा गई ... ये कैसी मुसीबत नई! नहीं .... अभी नहीं!

तभी दीदी अंदर आई. उन्होंने मेरा चेहरा देखा और कहा, "अरे पगली. इस उम्र में तो मुंहासे सभी को निकलते हैं. मुझे भी निकले थे और मैंने क्लिअरेसिल लगाई. तुम भी क्लिअरेसिल लगाओ." मैंने ऐसा ही किया. और सचमुच क्लिअरेसिल ने असर दिखाया.

अब मैं क्या बताऊं आपसे कि दीदी की शादी में मुझे कितना मज़ा आया.

क्लिअरेसिल कील-मुंहासे साफ़ करे और उन्हें फैलने से रोके.

क्लिअरेसिल

कील-मुंहासों का स्पेशलिस्ट, जो सचमुच असरदार है

OBM/5687/HN

मुड़-मुड़ के देखे संसार
सुपर रिन की चमकार!
सुपर
रिन
RIN
सुपर रिन की चमकार ज़्यादा सफ़ेद
किसी भी अन्य डिटर्जेंट टिकिया या बार से ज़्यादा सफ़ेद
हिन्दुस्तान लीवर का एक उत्कृष्ट उत्पादन
LINTAS RIN 93 2016 HI
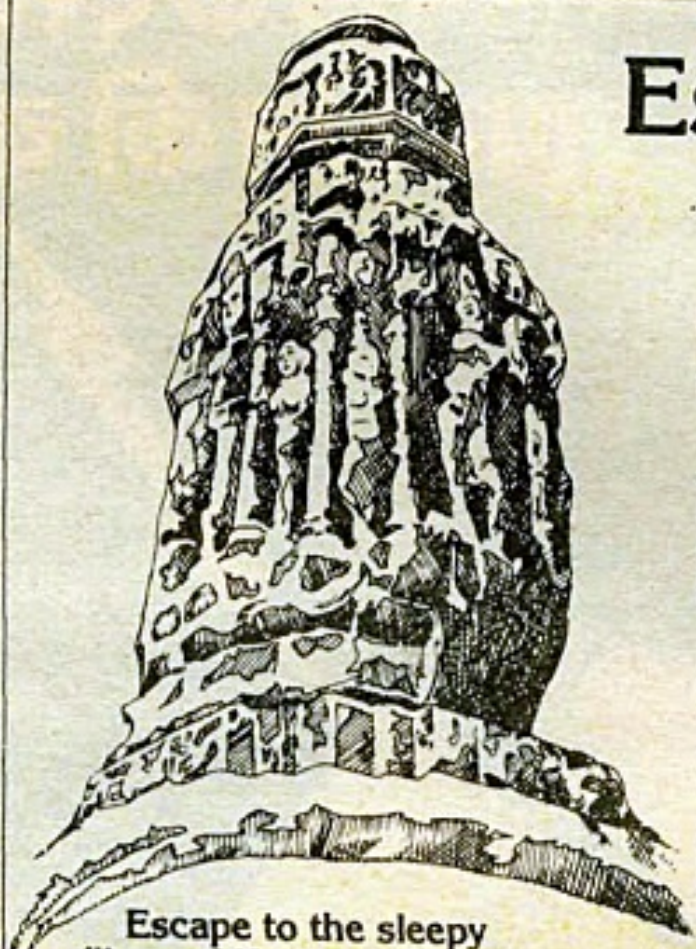
Escape to the

Escape to the sleepy village of Modhera. To the glorious sun-temple where once a golden deity reflected the rays of the rising sun back to the heavens. To a world of splendid architecture and exquisite sculpture that defies the ravages of time ...

The lost glory of Modhera. Watch it come alive in the pages of the Heritage.

The Heritage: magazine or mini library?

The Heritage is an amazing storehouse of information: every issue is a unique compilation of facts that answer some of the most intriguing questions.

How were black ants used in ancient surgery?

Why do the Charans of Rajasthan worship rats?

What kind of spacecraft will NASA send up to visit Halley's Comet?

And more ...

Fascinating articles on every aspect of Indian culture. Stories about the land, its history, its people, their customs, their arts and crafts ...

Travelogues that capture the spirit of little-known places and exotic lands.

Updates – and flashbacks – on science and technology.

From the publishers of Chandamama

eleventh century tonight.

Lucid articles that interpret Indian mythology and philosophy in terms the modern reader can understand.

Plus a fiction bonanza in every issue, written by some of the most well-known contemporary fiction writers. Ruskin Bond. Edith Pargeter. Manoj Das. And the best of Indian language fiction, translated to keep the flavour of the original.

All of which makes the Heritage a fascinating way to catch up with the past – and the present.

A galaxy of well-known authors

The Heritage carries articles by some of the most famous names in contemporary Indian literature and journalism. Regular contributors include M N Das, K A Abbas, M P Pandit, Prince Philip, Mulk Raj Anand.

And an expert panel of academicians who are authorities in their fields.

Start your Heritage library today

The Heritage now offers readers a unique money-back subscription scheme. Fill in the coupon below and enclose your annual subscription with it. If you are not satisfied with the first issue, please return it to us with your comments, within ten days, and we will refund your money in full.

Yes, I want to start my Heritage collection right away. I am enclosing a DD/MO for Rs 72 towards annual subscription.

Name: ....

Address: ....

....

Mail your subscription to: **Dolton Agencies, 188 N.S.K. Salai, Vadapalani, Madras 600 026.**

CMP. 1789

चन्दामामा

नवम्बर १९८५

*

विषय-सूची

*

एक प्रतिः २-५०

वार्षिक चन्दाः ३०-००

चन्दामामा

संचालक : नागिरेड्डी संस्थापक : 'चक्रपाणी'

एक समय था जब विशिष्ट कलाओं में प्रवीण व्यक्तियों को राजाश्रय प्राप्त हो जाया करता था। कभी ऐसा भी होता था कि इस बात से परिचित कुछ अशिक्षित लोग अपने को किसी ऐसे काम में प्रवीण प्रमाणित कर सुख से जीवन बिताने का सपना देखा करते थे, जिसका सम्बन्ध कला से कम, पर उनकी अकर्मण्यता से अधिक होता था। 'दरबारी पेटू' कहानी एक ऐसे ही तथ्य का प्रकाशन करती है।

अमर वाणी

धनादिकेषु विद्वन्ते, येत्र मूर्खा सुखाशया ।
तप्ता ग्रीष्मेण सेवन्ते, शैत्यार्थ ते हुताशनम् ॥

[जिन मनुष्यों का विचार यह होता है कि वे केवल धन के द्वारा सुखी हो सकते हैं, वे मूर्ख होते हैं। सुख के लिए धन की कामना करना कुछ उसी तरह है, जैसे तपती हुई ग्रीष्म ऋतु में शीतलता की कामना से अग्नि का आश्रय लेना।]

वर्षः ३८ नवम्बर १९८५ अंकः ३

एक प्रतिः २-५० :: वार्षिक चन्दाः ३०-००

ATLAS
FunPop
THE SUPER-DUPER LOLLYPOP
FUN POPS
for happy pops. . . and moms, too!
AMC/85

'चन्दामामा के संवाद

बाघों के 'एयर कूलर्स'

इस वर्ष की गर्मी दिल्ली के चिड़ियाघर के जानवरों को कोई भी हानि नहीं पहुँचा सकी। छोटे-छोटे जानवरों और पक्षियों को गरमी से बचाने के लिए वहाँ पंडाल बनाये गये। बाघों के लिए पंखों का इन्तज़ाम किया गया और गोरे बाघों के लिए एयर कूलरों का इन्तज़ाम विशेष रूप से किया गया।

बहरों के दूरभाष

ब्रिटेन के एसेक्स विश्वविद्यालय में बहरों के लिए उपयोगी एक चाक्षुष दूरभाष की व्यवस्था की गयी है। दूरभाष के तारों के माध्यम से चित्र उभरते हैं, जो संकेतों द्वारा सन्देश प्रसारित करते हैं।

ऐतिहासिक पूर्वयुग वातावरण

पेरिस नगर से २०० किलोमीटर की दूरी में स्थित मोर्वान प्रदेश में एक इतिहास-पूर्वयुग का उद्यान निर्मित किया जारहा है। किसी कालखंड में पृथ्वी पर जीवित डिनोजार्स जैसे जानवरों की प्रतिमाओं को गिटान नाम का एक शिल्पी गढ़ रहा है। ये प्रतिमाएं इतनी वास्तविक और जीवित जान पड़ती हैं कि आसपास के अन्य जानवर उनके समीप जाने से डरते हैं।

क्या आप जानते हैं ?

१. उपनदी बनी भीमानदी की प्रधान नदी कौन सी है ?

२. चम्बल नदी किस नदी की उपनदी है ?

३. अरब सागर में गिरने वाली नदियों में सबसे बड़ी नर्मदा है। दूसरी बड़ी नदी का नाम क्या है ?

४. भारत की 'विषाद नदी' कौन-सी नदी है ?

५. गांधी सागर कौन-सी नदी पर निर्मित है ?

उत्तर ६५ वें पृष्ठ पर देखें

अम्बरीष

अम्बरीष बड़े ही धर्मनिष्ठ राजा थे। वे विष्णु के भक्त थे। उनकी भक्ति पर प्रसन्न होकर विष्णु ने उन्हें वरदान दिया था कि उनका सुदर्शन चक्र सदा उनकी रक्षा करता रहेगा।

एक बार राजा अम्बरीष ने पूरे एक वर्ष तक किसी व्रत-नियम का आचरण किया। वर्ष के अन्तिम तीन दिन उन्होंने उपवास रखा और आखिरी दिन भगवान की पूजा-अर्चना समाप्त करके वे भोजन के लिए आसन पर बैठे। ठीक उसी समय दुर्वासा मुनि का आगमन हुआ। उन्होंने राजा अम्बरीष से कहा, "राजन्, आप कुछ देर ठहरें, मैं नदी में स्नान करके अभी आता हूँ।"

बहुत समय बीत गया, दुर्वासा मुनि न लौटे। उपवास तोड़ने का समय बीता जा रहा था। तब मुनियों ने अम्बरीष से अनुरोध किया, "राजन्, शुभ मुहूर्त बीतने से पहले ही आपको उपवास तोड़कर आहार ग्रहण कर लेना चाहिए!"

उन पूज्य जनों के आदेशानुसार राजा अम्बरीष ने उपवास तोड़ने के प्रतीक के रूप में थोड़ा सा जल पी लिया। उसी समय दुर्वासामुनि वहाँ आ पहुँचे। वे कुपित होकर बोले, "मेरे आने से पहले ही उपवास तोड़कर तुमने मेरा अपमान किया है।"

दुर्वासामुनि ने अपनी जटाओं में से एक जटा खींच ली और पृथ्वी पर पटक दी। उस जटा में से एक राक्षस उत्पन्न हुआ और वह अम्बरीष की ओर बढ़ने लगा। अम्बरीष ने सुदर्शन चक्र का स्मरण किया। दूसरे ही क्षण विष्णु के सुदर्शन चक्र का आविर्भाव हुआ। उसने राक्षस का सिर काटा और दुर्वासा का पीछा करने लगा।

दुर्वासा मुनि भयभीत हो दौड़कर इंद्र के पास पहुँचे। पर उस चक्र ने उनका पीछा न छोड़ा। दुर्वासा वहाँ से भागकर ब्रह्मा एवं शिव के पास गये। उन्होंने स्पष्ट कह दिया कि वे सुदर्शन चक्र से उनकी रक्षा न कर सकेंगे। अब दुर्वासा ने वैकुंठ का द्वार खटखटाया और जाकर विष्णु के चरणों में गिर पड़े।

विष्णु मुस्कराकर बोले, "मैंने विष्णु-चक्र के स्वतंत्र उपयोग का वरदान अम्बरीष को दिया है। तुम अम्बरीष की शरण में जाकर उनसे रक्षा की प्रार्थना करो!" विवश होकर दुर्वासा अम्बरीष के पास पहुँचे। उनसे क्षमा-प्रार्थना की। अम्बरीष ने भगवान विष्णु का स्मरण करके सुदर्शन चक्र को वापस बुला लिया और दुर्वासा मुनि को अभय दान दिया।
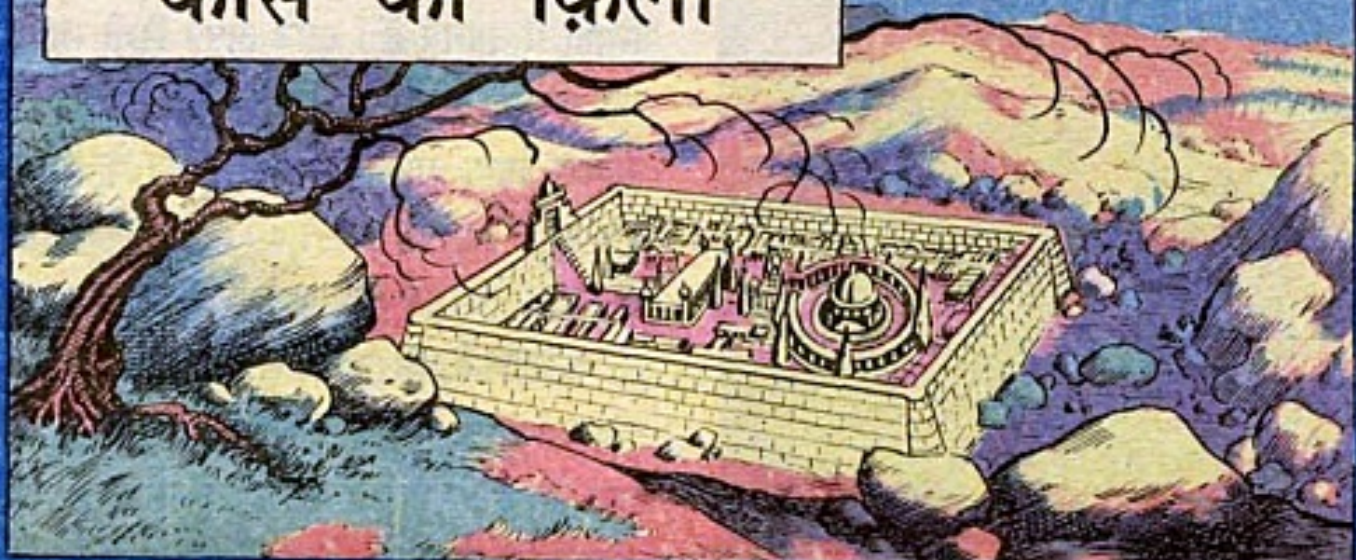
१२

[मांत्रिक शंखु के निवास-स्थान उस पहाड़ी प्रदेश में चंद्रवर्मा की मुलाक़ात कापालिनी से हुई। उन दोनों ने शंखु का अंत करने की योजना बनायी। सूर्योदय के समय शंखु पहाड़ी छोर के जिस पत्थर पर खड़े होकर मंत्र-पाठ करता था, उस पत्थर को चंद्रवर्मा ने रस्सी से बांध दिया और शंखु के उस पत्थर पर पैर रखते ही रस्सी खींचकर उसे ख़ाई में गिरा दिया। गिरते हुए शंखु ने अपने मंत्र-दंड को फेंका और मंत्रगृह को सरोवर में गिरा दिया। आगे पढ़िये...]

मांत्रिक शंखु ने 'धोखा, दग़ा !' चिल्लाकर अपने मंत्र-दंड को मंत्र-गृह की ओर फेंक दिया। यह देख कर कापालिनी वहीं ढेर होकर गिर पड़ी। शंखु का मंत्र-गृह तड़-तड़ ध्वनि करता हुआ नींव सहित उखड़ गया और हवा में उड़ने लगा। चंद्रवर्मा आँखें फाड़ फाड़कर देखने लगा। वह अभी होश में भी न आया था कि मंत्रगृह बड़े भारी धमाके के साथ सरोवर में गिर गया। भय और विस्मय से काँप रहे चंद्रवर्मा को इस बात का ध्यान भी नहीं था कि कापालिनी उसकी बगल में बेहोश पड़ी हुई है।

धीरे-धीरे कापालिनी ने आँखें खोलीं उसने देखा, समीप में ही चंद्रवर्मा खड़ा हुआ है। उसके आश्चर्य की कोई सीमा रही। पर वह जोर से पुकार नहीं सकती थी, इसलिए वह चंद्रवर्मा की ओर मुड़ी, और नीरस स्वर में पुकारा, "चंद्रवार्मा !"

चंद्रवर्मा ने घूमकर कापालिनी की तरफ़ दृष्टि
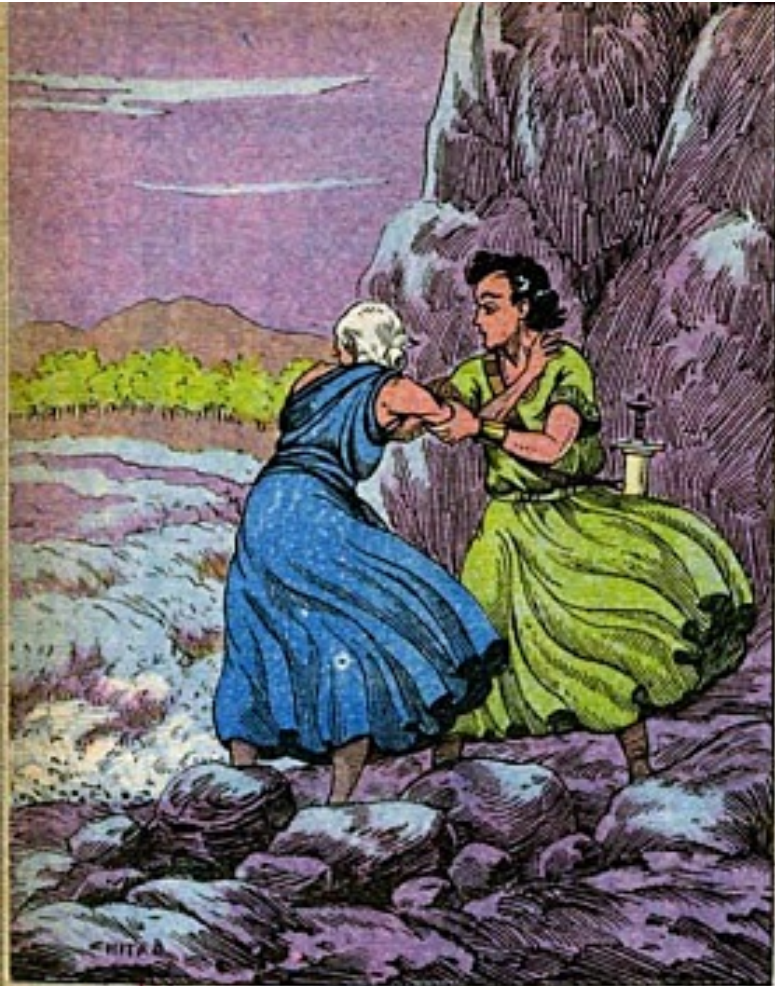
डाली। वह एक चट्टान का सहारा लेकर उठने का प्रयत्न कर रही थी। चंद्रवर्मा ने उसे अपने हाथ का सहारा दिया और किसी तरह खड़ा किया।

चंद्रवर्मा भी अचानक कापालिनी को वहाँ पाकर चकित रह गया। उसे कल्पना तक न थी कि वह उस प्रदेश में कापालिनी को देख सकेगा। उसे अपने समीप पाकर चंद्रवर्मा अत्यन्त प्रसन्न हुआ और एकटक उसकी आँखों में ताकता रह गया।

"चंद्रवर्मा, मुझे जिस दुर्भाग्य-देवी ने ग्रास रखा है, लगता है उसी ने तुम्हें भी अपने फन्दे में कस लिया है। मांत्रिक शंखु ने इस आखिरी क्षण में हमारे सारे प्रयत्नों पर पानी फेर दिया। इस वक्त हम दोनों ही अपनी पहले की असहाय स्थिति में आगये हैं। हमने अपने निजी स्थानों को छोड़ा, अनेक मुसीबतों और ख़तरों का सामना किया और किसी तरह शंखु के पहाड़ तक पहुँचे भी, पर अंत में हमें निराशा और दुख ही हाथ लगे हैं।" कापालिनी ने कहा।

कापालिनी के मुख से ये बातें सुनकर चंद्रवर्मा समझ गया कि उसका प्रयत्न विफल हो गया है। वह सरोवर में उठ रही ऊँची लहरों की ओर देखने लगा जो मंत्रगृह के गिरने के कारण उत्पन्न हो रही थीं।

उसने गहरा निःश्वास छोड़ा और कापालिनी से पूछा, "क्या मंत्रगृह के साथ अपूर्व शक्तिवाला वह शंख भी सरोवर में डूब गया है ? क्या इसी कारण तुम इतनी निराश हो गयी हो, कापालिनी !"

"हाँ, यही सच है ! शंखु के मंत्र-गृह में अपूर्व शक्तियों वाला शंख ही नहीं, बल्कि अत्यन्त महान शक्तियों से सम्पन्न और भी अनेक चीज़ें थीं। पर मैंने केवल उस शंख की ही कामना की थी। मैं चाहती थी उन अपूर्व शक्तियों वाली दूसरी असंख्य वस्तुओं से मैं तुम्हें तुम्हारे राज्य को वापस दिलवा दूँगी। तुम उनकी सहायता से अपने शत्रुओं को आसानी से जीत सकते थे। पर खेद की बात है कि अब वे सब इस मंत्रगृह के साथ सरोवर के अतल में चली गयी हैं। अब तुम और मैं फिर से अपनी पूर्व स्थिति में ही आगये हैं।" कापालिनी ने

कहा ।

अन्तिम क्षण में हाथ में आते-आते निकल गयीं अपूर्व शक्तियों का स्मरण करके चंद्रवर्मा पल भर को निश्चेष्ट रह गया, फिर साहस बटोर कर बोला, "कापालिनी, अब उन सब वस्तुओं की याद करने से कोई फ़ायदा नहीं है। क्रूर कर्म करने वाले उस मांत्रिक शंखु को हमने यमलोक पहुँचा दिया है, बस यही हमारे सन्तोष का कारण होना चाहिए ।"

चंद्रवर्मा क्षण भर को रुका, फिर किसी बात का स्मरण कर उसने कापालिनी के चेहरे की तरफ़ देखकर पूछा, "कापालिनी, वह शंख पानी में गिर गया है न ! इस वक्त तुम्हें पुनः यौवन प्रदान कर तुम्हारी वृद्धावस्था को दूर करनेवाली अनोखी वस्तु की खोज हम कहाँ करें ?"

"ऐसी किसी वस्तु की खोज करने का प्रश्न ही कहाँ उठता है चंद्रवर्मा ? उस शंख जैसी किसी दूसरी वस्तु का उपलब्ध होना असंभव है। मैं अब तक जितने वर्ष भी ज़िन्दा रही हूँ, उतने वर्ष कोई भी साधारण मानव ज़िन्दा नहीं रह सकता। मेरे मन से अब वह आशा लुप्त होती जा रही है कि मैं इसी तरह और अधिक दिन तक जीवित रह सकती हूँ। अगर मैं ज़्यादा दिन ज़िन्दा भी रहूँ तो नये सिरे से कौन से सुख भोगनेवाली हूँ ? इस समय मेरी सारी चिन्ता तुम्हारे भविष्य को लेकर है। तुमने मेरे लिए अत्यन्त श्रम उठाया है। अपने प्राणों को भी जोख़िम में डाला है। तुमने निस्वार्थ भाव से मेरी बड़ी मदद की, इसे मैं कभी भूल नहीं सकती। क्यों कि सब कोई अपने स्वार्थ के सगे होते हैं। पर तुमने संपूर्ण हृदय से मेरी सेवा की। पर मैं बदले में तुम्हारी कोई मदद करने की हालत में नहीं हूँ। अपनी इस असहाय हालत पर मुझे दुख हो रहा है !" कापालिनी हताश-सी होकर व्यथा पूर्ण स्वर में बोली ।

उस वक्त कापालिनी के चेहरे पर विषाद की रेखाएँ स्पष्ट झलक रही लीं ।

कापालिनी की बात सुनकर चंद्रवर्मा के हृदय में उसके प्रति गहरी सहानुभूति और आदर के भाव जगे। कापालिनी अनेक वर्षों से उस अपूर्व शक्तियों वाले शंख को पाने का प्रयास

कर रही थी । आखिरी क्षण में असफलता उसके हाथ लगी, फिर भी वह अपने लिए दुखी नहीं है । उसका सारा दुख इस बात का है कि वह चंद्रवर्मा को पुनः अपना राज्य प्राप्त करने में मदद न कर पायी । जिसने अपने प्राणों का मोह त्याग कर सदा उसकी सहायता की और बदले में वह उस का समुचित उपकार करना चाहती थी, पर वह असहाय रह गई । इस बात का उसे अत्यन्त दुख था ।

"कापालिनी, तुम दुख मत मानो । तुमने मेरी बड़ी मदद की है । मैं नदी की धारा में बहकर जब तुम्हारे निवास-स्थान उस भयावह जंगल के निकट आया तो उस वक्त मुझे लगा था कि मेरी मौत निश्चित है । लेकिन तुमने समय पर मेरी प्राणरक्षा की । अपने घर में मेरी आवभगत की और भविष्य में मैं अपना राज्य प्राप्त कर सकूँगा, इस बात का साहस दिया । तुम्हारी यह एक मदद तुम्हारे प्रति मेरे जीवन भर कृतज्ञ बने रहने के लिए पर्याप्त है । अब यह बताओ, इस समय हमारा कर्त्तव्य क्या है ?" चंद्रवर्मा ने जोर देकर पूछा ।

कापालिनी पहाड़ की तरफ़ देखती हुई बोली, "चंद्रवर्मा, अब तो ऐसा लगता है कि हम दोनों के रास्ते अलग-अलग हो जायेंगे । मैं अपना शेष जीवन इसी पर्वत पर बिताना चाहूँगी । अपनी अंतिम घड़ियाँ किसी एक स्थान पर शांति के साथ बिता सकूँ, मेरे लिए यही अधिक उत्तम होगा ।" कापालिनी के स्वर में अब भी चिंता थी ।

"तब तो इस पर्वत पर कोई सुन्दर स्थान देखकर मैं और काल नाग हम दोनों मिल कर तुम्हारे लिए एक घर का निर्माण कर देंगे । क्या हम इसी समय उस पहाड़ पर चलें ?" चंद्रवर्मा ने पूछा ।

कापालिनी ने स्वीकृतिसूचक सिर हिलाया । चंद्रवर्मा चट्टानों के बीच बनी पगडंडी से होकर पहाड़ की ओर चल पड़ा । उसके पीछे कालनाग और कापालिनी चलने लगे । धीरे-धीरे वे पहाड़ी के उस छोर पर पहुँच गये, जहाँ से चंद्रवर्मा ने शंखु को खाई में गिराया था । चंद्रवर्मा क्षण भर के लिए रुका और उसने नीचे की तरफ़ झाँक कर देखा । शंखु वहाँ औंधे मुँह

गिरा पड़ा था। चंद्रवर्मा बड़े ग़ौर से देखने लगा, उसे लगा कि शंखु का शरीर हिल रहा है। उसके हृदय में उस क्रूर मांत्रिक के प्रति गहरा द्वेष पैदा हुआ।

चंद्रवर्मा निकट आगयी कापालिनी की तरफ़ मुँह करके बोला, "कापालिनी, मुझे ऐसा लगता है कि उस दुष्ट मांत्रिक के अभी प्राण नहीं निकले हैं। अगर कहीं वह ज़िन्दा रह गया तो हमारे प्राण ख़तरे में पड़ जायेंगे। मैं यह विशाल चट्टान लुढ़का कर उसका काम तमाम करता हूँ।" चंद्रवर्मा ने एक चट्टान को जोर लगाकर हिलाया और उसे मांत्रिक शंखु के ऊपर लुढ़का दिया।

इसके बाद चंद्रवर्मा फिर चलने लगा। कापालिनी और कालनाग उसके पीछे-पीछे आरहे थे। वे लोग शीघ्र ही उस स्थान पर पहुँच गये, जहाँ शंखु का मंत्र-गृह अवस्थित था। अब उस जगह कटि तक गहरा गड्ढा और नींवों के चिन्ह मात्र थे। चंद्रवर्मा ने उस जगह की ओर हाथ का संकेत कर कापालिनी से कहा, "हम इसी स्थान पर तुम्हारे लिए आवास-गृह बनायेंगे, तुम्हें स्वीकार है न, कापालिनी ?"

कापालिनी ने अपनी स्वीकृति दी। सूर्य आसमान में कुछ ऊपर उठ आया था। चंद्रवर्मा ने पूरब की तरफ़ निगाह डाली और बोला, "मुझे भूख लग रही है। थोड़ा आहार लेकर काम शुरू करें तो अच्छा होगा। पर फल-मूल लाने के लिए हमें फिर से पहाड़ से नीचे उतरना होगा !"

कापालिनी ने भाँप लिया कि चंद्रवर्मा थक गया है। वह कालनाग की ओर मुड़ कर बोली, "कालनाग, तुम्हें मैं तुम्हारा पूर्व रूप प्रदान करती हूँ। आज से तुम एक स्वतंत्र प्राणी हो। तुम जहाँ चाहो आ-जा सकते हो !" यह कह कर उसने कोई मंत्र जाप किया और अपने हाथ के दण्ड से उसके मस्तक का स्पर्श किया। दूसरे ही क्षण वहाँ पर एक छह फुट ऊँचा युवक खड़ा था। वृक्ष के तने की तरह उसके पैर थे और हाथी की सूंड के समान लंबी, मज़बूत भूजाएँ थीं।

"कापालिनी, तुम्हारी कृपा के लिए मैं

अत्यन्त कृतज्ञ हूँ !" युवक ने कहा । फिर चंद्रवर्मा की तरफ़ मुड़ कर उसने प्रणाम किया और बोला, "युवराज, आपके उपकार को मैं आजीवन नहीं भूलूँगा ।"

चंद्रवर्मा ने उस युवक की शक्तिशाली देह पर दृष्टिपात कर कहा, "मैं नहीं जानता कि पहले मानव-रूप में रहते हुए तुम किस नाम से पुकारे जाते थे । मेरा एक शत्रु है, उसका नाम सर्प केतु है । तुम मेरे मित्र हो, मैं तुम्हारा नाम कालकेतु रखना चाहता हूँ ।"

"युवराज, आप मुझे कालकेतु ही पुकारें । एक दिन आयेगा, जब मैं आपके शत्रु सर्पकेतु का अन्त करके आपका दिया अपना कालकेतु नाम अवश्य ही सार्थक बनाऊँगा ।" युवक ने कहा ।

इस वार्तालाप के बाद कालकेतु पहाड़ से उतरा और उसने सरोवर के किनारे वाले बगीचे से अनेक प्रकार के फल तोड़ कर एकत्रित कर लिये । इसके बाद वह पुनः कापालिनी एवं चंद्रवर्मा के पास लौट आया । तीनों ने भरपेट फल खाये और फिर झरने का शीतल जल पिया । कुछ देर विश्राम करके चंद्रवर्मा और कालकेतु शंखु के मंत्र-गृह की ख़ाली पड़ी नींव पर कापालिनी के लिए घर बनाने लगे । यह काम सूर्यास्त तक समाप्त होगया ।

उस रात तीनों उसी मकान में सोये । पर चंद्रवर्मा को आधी रात तक नींद नहीं आयी । वह अपने भावी कार्यक्रम पर विचार करने लगा । वह कापालिनी की मदद से अपूर्व शक्तियां प्राप्त करके अपने खोये हुए राज्य को पाना चाहता था, पर मंत्र-गृह के डूबने से वह प्रयत्न असफल हो गया । विश्वासघात कर उसके पिता की दारुण हत्या करने वाला सर्पकेतु इस वक्त पूरे माहिष्मती राज्य का राजा बन गया होगा । ऐसे व्यक्ति को युद्ध में पराजित करने के लिए भारी सेना की ज़रूरत है और सेना का संगठन करने के लिए बहुत धन चाहिए । वह कैसे प्राप्त होगा ?

चंद्रवर्मा इन्हीं विचारों में डूबा रहा । इसी तरह आधी रात बीत गयी । वह उठा और बाहर चला आया । चांदनी रात थी, चंद्रवर्मा टहलते हुए बहुत सी बातों के बारे में सोच रहा था ।

थोड़ी देर बाद कालकेतु उसके पास पहुँचा और बोला, "युवराज, इस आधी रात के समय आप बाहर टहल रहे हैं, सोये भी नहीं ? वह कौन सी चिन्ता या समस्या है जो आप को इतना परेशान कर रही है ?"

"कालकेतु, मेरे लिए समस्याओं की कमी क्या है ? तुम तो जानते हो, मैं अपना राज्य खोकर जंगलों में भटक रहा हूँ। मैं कापालिनी की मदद से अपना खोया हुआ राज्य वापस प्राप्त करना चाहता था, लेकिन अन्तिम क्षण में मांत्रिक शंखु ने अपने मंत्र-गृह को सरोवर में गिराकर सबको हताश कर दिया है। मैं यह सोचकर दुखी हूँ कि अब इस हालत में कहाँ जाऊँ, किसकी मदद प्राप्त करूँ ? क्या तुम जानते हो कि यहाँ से चारों दिशाओं में कितनी दूर मनुष्यों की बस्तियाँ हैं ?" चंद्रवर्मा ने पूछा।

"अगर आप इन पहाड़ों और जंगलों के बीच उत्तरी दिशा में सौ योजन की यात्रा तय कर लें तो उसके बाद आप पुनः जनपदों में प्रवेश कर सकेंगे। वैसे अभी मैं आपके साथ चलना चाहता था, लेकिन कापालिनी को इस असहाय हालत में पहाड़ पर अकेले छोड़ जाने का मन नहीं कर रहा है। क्यों कि वह अब अधिक दिन ज़िंदा न रह सकेगी। उसके बाद मैं कापालिनी के पुराने आवास-गृह में जाऊँगा और वहाँ भूत और वर्तमान को प्रतिबिम्बित करनेवाले उस काँच के गोलक की मदद से आपका पता लगाकर आपके पास चला आऊँगा। काँच का वह गोलक आपके लिए भी अत्यन्त सहायक सिद्ध होगा।" कालकेतु ने उत्तर दिया।

कालकेतु की बातों से चंद्रवर्मा तनिक भी उत्साहित नहीं हो सका। उसे पहाड़ों और जंगलों में सौ योजन की यात्रा तय करनी है। उसके बाद ही वह जनपदों में प्रवेश कर पायेगा। भगवान ही जानता है कि इस सौ योजन की यात्रा में उसे कैसी भारी मुसीबतों का सामना करना पड़ेगा।

सूर्योदय होने तक चंद्रवर्मा इन्हीं विचारों में डूबा रहा। सूरज के उगते ही उसने सरोवर में स्नान किया और फिर कापालिनी के निकट जाकर अपनी प्रस्तुत यात्रा के बारे में बताया। सारा वृत्तान्त सुन कर कापालिनी ने उसे आशीर्वाद दिया और फिर कहा, "चंद्रवर्मा, मेरा

दृढ़ विश्वास है कि तुम अनेक मुसीबतों का सामना करने के बावजूद अन्त में अपने शत्रु का संहार करके अपने राज्य पर पुनः अधिकार कर लोगे ।''

चंद्रवर्मा ने कापालिनी और कालकेतु से विदा ली और थोड़ी देर भी विलंब किये बिना पहाड़ से उतर पड़ा। अब वह उत्तरी दिशा को अपना लक्ष्य बना कर गहन जंगल के बीच चलने लगा ।

दोपहर तक चंद्रवर्मा बराबर चलता रहा। जब वह थक गया तो आराम करने के लिए एक महावृक्ष के नीचे पहुँचा। उसकी छाया में लेटने के लिए वह नीचे की ज़मीन को समतल बनाने लगा। तभी उसे वृक्ष के तने के समीप क़रीब चार फुट लंबी एक लोहे की जंजीर दिखाई दी। उस भयंकर जंगल में जंजीर जैसी चीज़ को देखकर चंद्रवर्मा को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने उस जंजीर को हाथ में उठा लिया और उसकी जाँच करने लगा। काफ़ी समय से उसे काम में नहीं लाया गया था, इसलिए उसमें जंग लगी हुई थी। वह सोचने लगा, यह लोहे की जंजीर इस भयंकर जंगल के बीच कैसे आयी होगी? अभी वह यह चिन्तन कर ही रहा था कि उसे दूर पर कानों के पर्दों को फोड़ने वाली एक अत्यन्त भयंकर भूंक सुनाई दी ।

उस भूंक को सुनकर चंद्रवर्मा ने म्यान से तलवार खींच ली और तन कर खड़ा होगाया। उसने देखा, कुछ ही दूर पहाड़ी शिलाओं पर उछल-कूद करता एक कुत्ता अपनी दाढ़ें फैलाकर उसकी तरफ़ दौड़ा आ रहा है। ''यह निश्चय ही कोई साधारण कुत्ता नहीं है, इस रूप में स्थित कोई भयंकर राक्षस है'' —यह सोचकर चंद्रवर्मा ने अपने दायें हाथ में तलवार ली और बायें हाथ से लोहे की जंजीर को ऊपर उठा लिया। उसे ऐसा लगा, कि संकट के क्षण में लोहे की जंजीर उसकी आत्मरक्षा में सहायक हो सकती है ।

इतने में शैतान की तरह दिखनेवाले उस कुत्ते ने बड़ी ज़ोर से भूंक कर चंद्रवर्मा की तरफ़ छलांग लगायी ।

(क्रमशः)

यमराज का भैंसा

दृढ़व्रती विक्रमार्क पेड़ के पास लौट आये। पेड़ से शव उतारा और कंधे पर डाल हमेशा की तरह श्मशान की ओर चलने लगे। तब शव में वास करनेवाले बेताल ने पूछा, "राजन्, अनेक असफलताओं का सामना करने के बाद भी आप इतनी लगन के साथ इस अंधेरी रात में भयानक श्मशान में घूमते हुए जो इतना कठिन श्रम उठा रहे हैं, तो इसके पीछे आपकी परोपकार वृत्ति नहीं, बल्कि आपका स्वार्थ ही होगा। मैं आपको एक बात का स्मरण दिलाना चाहता हूँ। इस दुनिया में ऐसे भी अनेक लोग हैं जो धन, स्वर्ण, वस्तु, वाहन और यश के लोभ में पड़कर अनेक यातनाएं झेलते हैं, लेकिन जब उनकी प्राप्ति का समय आता है, तब चंचल मनोवृत्ति के वशीभूत होकर उनका तिरस्कार कर बैठते हैं। ऐसे ही लोगों में एक कुमार स्वामी नाम का वैद्य भी है। मैं आपको उसकी कहानी सुनाता हूँ। श्रम को भुलाने के लिए सुनिये!"

बेताल ने कहानी आरंभ की:

बेताल कथा

विंध्याचल के समीप चांदपुर गाँव में भैरवस्वामी नाम का एक वैद्य रहता था। उसके एक ही पुत्र था, नाम था कुमार स्वामी। एक वैद्य के रूप में भैरवस्वामी की उस इलाके में अच्छी ख्याति थी। लेकिन चांदपुर गाँव गरीब लोगों की बस्ती थी, इसलिए भैरवस्वामी अपने वैद्यक के पेशे से विशेष धन अर्जन नहीं कर सका। भैरवस्वामी के हृदय में राजाश्रय पाने की प्रबल इच्छा थी, पर वह स्वयं जानता था कि चिकित्सा शास्त्र में उसकी ख़ास गहरी पैठ नहीं है, उसकी हैसियत एक साधारण वैद्य की ही है, इसलिए उसने कभी भी अपने गाँव से बाहर जाने की कोशिश नहीं की और सारा जीवन वहीं बिता दिया।

भैरवस्वामी एक बार बहुत बीमार पड़ा। जब चारपाई पकड़े उसे कई दिन हो गये तो वह समझ गया कि अब वह ज़्यादा दिन ज़िन्दा नहीं रह सकेगा। उसे अपने इकलौते पुत्र कुमारस्वामी की चिंता हुई। उसने उसे बुलाकर समझाया, "बेटा, मेरा अन्तिम समय निकट आगया है। तुम अभी सोलह साल के ही हो। मैंने तुम्हारे लिए कुछ भी बचाकर नहीं रखा। अधकचरा ज्ञान किसी काम का नहीं होता। इस समय तुम मुझसे चिकित्सा-सम्बन्धी जो भी ज्ञान प्राप्त करोगे, वह तुम्हें कभी फलीभूत नहीं होगा। इसलिए मेरी इच्छा है कि तुम वैद्यक के इस धंधे में मत पड़ना और ग्रामवासियों की मदद से खेतीबाड़ी का काम शुरू करके सुख से अपना जीवन बिताना।"

कुमारस्वामी बड़ा ही होनहार और तीव्र बुद्धि का युवक था। काम के प्रति उसके अन्दर गहरी लगन थी। उसके मन में यह प्रबल इच्छा शुरू से ही थी कि वह चिकित्सा शास्त्र में पारंगत होकर राजधानी पहुँच जाये और अपार धनार्जन करके सुख और यश का जीवन व्यतीत करे।

अपनी इसी महत्वाकांक्षा से प्रेरित होकर उसने अपने पिता से कहा, "पिताजी, अभी आप अपनी मृत्यु का विचार निकाल दीजिए। फिर से आपके स्वस्थ होने की संभावना है और आप अवश्य ही स्वस्थ होंगे। पर अगर भाग्य विपरीत हुआ, तो भी मैं खेतीबाड़ी को अपना पेशा कभी भी नहीं बनाऊँगा।"

पुत्र की बात से भैरवस्वामी को बड़ा आश्चर्य हुआ, पूछा, "इसका मतलब यह है कि तुम अपने अधकचरे ज्ञान को लेकर मरीज़ों का इलाज करना चाहते हो ? क्या तुम्हें यह नहीं मालूम कि 'नीम हकीम ख़तरे जान' होता है ?"

"मैं यह बात अच्छी तरह जानता हूँ कि एक वैद्य के रूप में मेरा ज्ञान नहीं के बराबर है। लेकिन चिकित्सा शास्त्र की प्राथमिक कक्षा के विद्यार्थी के रूप में मेरा ज्ञान कम नहीं है। मेरी यह आंतरिक इच्छा है कि एक दिन मैं महेंद्रयोगी का शिष्य बन कर चिकित्सा शास्त्र में पूर्ण योग्यता प्राप्त करूँ।" कुमार स्वामी ने कहा।

पुत्र की बातों से भैरवस्वामी को हार्दिक सुख और संतोष प्राप्त हुआ। इस वार्तालाप के एक सप्ताह बाद भैरवस्वामी का निधन होगया। कुमार स्वामी ने अपने पिता का अन्तिम संस्कार किया और महेंद्रयोगी के आश्रम में जाने की तैयारी करने लगा। महेंद्रयोगी वहाँ से सौ कोस की दूरी पर एक जंगल में एक आश्रम का संचालन करते थे। वे अनेक शास्त्रों के ज्ञाता और योगशास्त्र में विशेषज्ञ गुरु के रूप में प्रसिद्धि-प्राप्त थे। लेकिन वे किसी को भी सरलता से शिष्य स्वीकार नहीं करते थे। अनेक परीक्षाओं में उत्तीर्ण होने के बाद ही कोई उनका शिष्य बन सकता था।

कुमार स्वामी बड़े विनम्र भाव से महेंद्रयोगी के आश्रम में पहुँचा।

महेंद्रयोगी ने कुमार स्वामी से पूछा, "तुम किस विद्या का अभ्यास करना चाहते हो ?"

कुमार स्वामी ने चिकित्सा शास्त्र का विद्यार्थी बनने की इच्छा प्रकट की। महेंद्रयोगी ने उसकी परीक्षा ली और फिर उसे पात्र जानकर अपना शिष्य बना लिया। कुमार स्वामी ने गुरुकुल में रहकर चार वर्ष तक चिकित्सा शास्त्र का अभ्यास किया। उसकी लगन और कुशलता देखकर महेंद्रयोगी के हृदय में उसके प्रति पुत्र की सी भावना पैदा हो गयी।

अब महेंद्रयोगी काफ़ी वृद्ध हो चुके थे। उन्होंने एक दिन सारे शिष्यों को एकत्रित किया और कहा, "अब मैं अपना शेष जीवन तपस्या और मौन में बिताना चाहता हूँ। अब इस आश्रम में विद्याओं का पठन-पाठन नहीं होगा। तुम सबने अपने-अपने क्षेत्र में योग्यता प्राप्त की
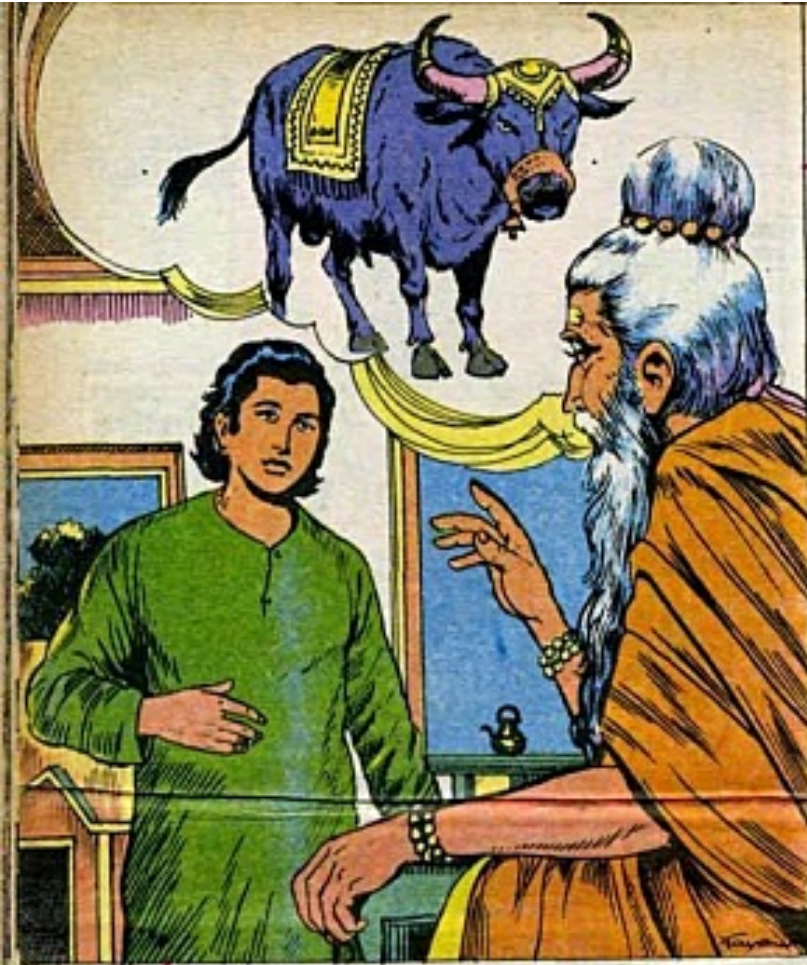
है । अब तुम स्नातक की पदवी प्राप्त कर चुके हो । इस आश्रम से जाने के पूर्व तुम अगर मुझसे कुछ विशेष जानना या पाना चाहते हो तो स्पष्ट कह सकते हो !''

इसके बाद महेंद्रयोगी एक कक्ष में चले गये । उन्होंने अलग-अलग एक-एक शिष्य को अपने कक्ष में बुलाकर उसकी इच्छा के बारे में पूछा और सबका समाधान किया । अब कुमार स्वामी की बारी थी । उसने कक्ष में प्रवेश कर गुरु-चरणों में प्रणाम किया और निवेदन किया, ''गुरुदेव, हमारे कुल की कई पीढ़ियाँ वैद्यक का आश्रय लेकर अपना निर्वाह करती आयी हैं । पर वे कभी भी निर्धनता की रेखा को लाँघकर सुखपूर्वक अपना जीवन नहीं बिता पायीं ।''

''अच्छा, ऐसा है ! तुम क्या चाहते हो ?'' महेंद्रयोगी ने पूछा ।

''गुरुदेव, जन्म जितना सत्य है, मृत्यु भी उतने ही अंशों में सत्य है । लेकिन जन्म और मृत्यु के बीच जो जीवन है, वह अनेक पीड़ादायक व्याधियों का शिकार बनता है । उन व्याधियों को दूर करनेवाली दिव्य शक्तियाँ मुझे प्रदान कीजिए !'' कुमार स्वामी ने विनती की ।

कुमार स्वामी की बात से महेंद्रयोगी को आश्चर्य हुआ । उन्होंने कहा, ''पुत्र, आयु के समाप्त होने पर कोई भी औषधि काम नहीं देती है । रोगी की जैसी शारीरिक और मानसिक दशा होती है, उसमें औषधि केवल उपशमन का ही काम करती है । फिर भी, मैं तुम्हारी मनोकामना की पूर्ति के लिए तुम्हें एक शक्ति प्रदान करना चाहता हूँ । तुम भविष्य में जिस भी रोगी का इलाज करो, अगर उसके सिरहाने की ओर तुम्हें यमराज का भैंसा दिखाई दे तो समझ लेना कि उसकी आयु समाप्त हो चुकी है । ऐसी स्थिति में तुम्हारा कोई भी इलाज फलदायक नहीं होगा, इसलिए तुम उसका इलाज मत करना ।''

कुमार स्वामी अपने गुरुदेव के इस अनुग्रह पर अत्यन्त प्रसन्न हो उठा । उसने कहा, ''गुरुदेव, मैं आपकी इस कृपा के लिए अत्यन्त कृतज्ञ हूँ । मैं केवल एक बात और चाहता हूँ । आप मुझे वह उपाय बता देने की कृपा करें, जिससे मैं जीवन में केवल एक बार यमराज के मृत्युदूत उस भैंसे को भगा सकूँ !''

महेंद्रयोगी क्षण भर को गंभीर हो उठे, फिर बोले, "किसी विशेष रोगी की रक्षा के लिए तुम एक बार उस भैंसे को भगा तो अवश्य सकते हो, लेकिन इसके बाद तुम्हें हमेशा के लिए अपने चिकित्सक के पेशे को त्यागना पड़ेगा। फिर भी तुमने पूछा है तो मैं तुम्हें उपाय बताता हूँ। जब तुम यमराज के भैंसे को देखो तो अपने मन में दुर्गा के वाहन सिंह का स्मरण करना और कहना, 'देखो, यह देवी का वाहन सिंह है ! महिषासुर, तू शीघ्र यहाँ से भाग।' —बस वह भैंसा तुरन्त अदृश्य हो जायेगा।"

कुमारस्वामी ने अपने गुरु को साष्टांग प्रणाम किया और उनकी चरण-रज माथे पर लगाकर अपने घर लौट आया। थोड़े समय में ही वह एक कुशल वैद्य के रूप में प्रसिद्ध हो गया।

कुमार स्वामी जिन रोगियों का भी इलाज करता, वे पूर्ण रूप से स्वस्थ हो जाते। पर कुछ रोगियों के लिए वह कह दिया करता, "यह तो बड़ी विचित्र बीमारी है। चिकित्सा शास्त्र में इसके लिए कोई दवा नहीं है !" जिन रोगियों को इलाज से वह इनकार करता, वास्तव में उनके सिरहाने उसे यमराज का भैंसा दिख जाया करता था। कुमार स्वामी के अधिकांश रोगी स्वास्थ्य-लाभ करते, इसलिए वह बहुत ही लोकप्रिय होगया।

दिन बीतते गये। एक बार राजा के यहाँ से कुमार स्वामी के लिए बुलावा आया। चांदपुर राजा विभूतिसिंह के राज्य का ही एक गाँव था। कुमारस्वामी तुरन्त राजदूतों के साथ राजधानी के लिए रवाना होगया। राजा की एकमात्र बेटी

सुवर्णा लंबी बीमारी से पीड़ित थी। अनेक वैद्यों ने अनेक तरह के इलाज किये, पर राजकुमारी सुवर्णा को निरोग न कर पाये। राजा विभूतिसिंह ने अंत में यह घोषणा की थी कि जिस वैद्य के इलाज से राजकुमारी स्वास्थ्य-लाभ करेगी, उसे एक जमींदारी और एक लाख स्वर्ण मुद्राएँ पुरस्कार में दी जायेंगी ।

कुमार स्वामी राजधानी पहुँचा। राजा विभूति सिंह स्वयं उसे राजकुमारी के कक्ष में ले गये। कुमार स्वामी ने राजकुमारी की तरफ देखा। उसके सिरहाने के दायीं ओर यमराज का भैंसा खड़ा था ।

अपनी शक्ति के प्रयोग का सर्वोत्तम अवसर जान कुमारस्वामी यह कहने को हुआ, "देखो, यह देवी का वाहन सिंह है !" —पर उसने तुरन्त अपना संयमन किया और राजा से कहा, "महाराज, यह बड़ी विचित्र बीमारी है, चिकित्सा शास्त्र में इस रोग का कोई इलाज नहीं है । मैं असमर्थ हूँ !"

कुमार स्वामी के उत्तर से राजा विभूतिसिंह क्षुब्ध हो उठे। रोषपूर्वक बोले, "मैंने सुना है कि तुम्हारे इलाज से कैसे से कैसे विषम रोग ठीक हो जाते हैं। सभी लोगों का यह कहना है कि जिसका भी तुमने इलाज किया, उसने स्वास्थ्य-लाभ किया है। यही कारण है कि मैंने तुम्हें बुलाया है । अगर तुमने इसी क्षण राजकुमारी का इलाज शुरू न किया तो तुम्हें देश-निष्कासन का दंड भोगना पड़ेगा !"

राजा की बात सुनकर कुमार स्वामी ने विनय पूर्वक जवाब दिया, "महाराज, आप चाहे जो भी करें, किंतु मैं राजकुमारी का इलाज नहीं कर सकता !"

राजा के क्रोध में मानो घी पड़ गया। उन्होंने तुरन्त अपने सैनिकों को बुलाकर आदेश दिया, "तुम लोग कुमार स्वामी को इसी समय हमारे राज्य की सीमा से बाहर कर दो। इतना ही नहीं, यह फिर कभी हमारे राज्य के अन्दर दिखाई न दे। अगर ऐसा हुआ तो इसे तुरन्त बन्दी बनाकर कारागार में डाला जाये !"

बेताल ने कहानी सुनाकर विक्रमार्क से पूछा, "राजन्, कुमार स्वामी के इस व्यवहार के बारे में आपका क्या विचार है ? वह चाहता था कि

वैद्य के रूप में वह खूब ख्याति अर्जित करे और खूब धन कमाकर सुख-चैन का जीवन बिताये। राजकुमारी सुवर्णा की बीमारी से उसे यह अवसर प्राप्त भी हुआ। राजकुमारी के सिरहाने यमराज का भैंसा देखने के बाद अगर वह देवी दुर्गा के सिंह का स्मरण कर उसे भगा देता तो उसे सब कुछ मिल जाता। इसके विपरीत उसने निर्वासन का दंड स्वीकार किया। इसका कारण उसका चपल चित्त ही है न ? इस सन्देह का समाधान अगर आप जानकर भी न करेंगे, तो आपका सिर फूटकर टुकड़े-टुकड़े हो जायेगा।''

राजा विक्रमार्क ने उत्तर दिया, ''यह बात सही है कि कुमारस्वामी के मन में धन-वैभव प्राप्त करने की प्रबल इच्छा थी। इसीलिए उसने महेंद्र योगी से उस उपाय के लिए निवेदन किया, जिससे वह जीवन में एक बार उस भैंसे को भगा सके। उसके निवेदन के पीछे यही उद्देश्य था कि कभी किसी धनवान या राजा को मृत्यु के मुख से बचाकर वह लाखों की सम्पत्ति प्राप्त करे। पर महेंद्र योगी ने उपाय के साथ-साथ उसे यह चेतावनी दे दी थी कि तब से वह अपने चिकित्सा-कार्य में असमर्थ हो जायेगा। कुमार स्वामी को अपने वैद्यक के कार्य से लगाव था वह धन की अपेक्षा रोग-निदान को अपना लक्ष्य मानता था। उसने अनेक वर्षों तक रोगियों का इलाज करके सफलता प्राप्त की थी। उसे लोगों की दुआएं और लोक-प्रियता दोनों ही प्राप्त थे। राजकुमारी को रोगमुक्त करने का अर्थ था, आगे वैद्यक छोड़ देना। अपने सुख-वैभव की प्राप्ति के लिए वह उन लोगों को उस लाभ से वंचित नहीं करना चाहता था जो उसके इलाज से रोग मुक्त होकर स्वस्थ जीवन बिताते थे। इसी भावना के प्रभुत्व के कारण कुमार स्वामी ने राजकुमारी का इलाज करने से इनकार कर दिया। इसका कारण उसके चित्त की चपलता नहीं, हृदय की विशाल प्रेमभावना है।''

राजा के इस प्रकार मौन होते ही बेताल शव के साथ अदृश्य होकर पुनः पेड़ पर जा बैठा।

(कल्पित)

तीर का निशाना

निर्लिप्त की आयु अब चालीस वर्ष की हो चुकी थी। अचानक ही एक दिन उसे अपनी निरर्थकता का बोध हुआ। उसके मन में यह विचार आया कि उसने जीवन में कुछ भी नहीं साधा है। उसके देखते-देखते कई लोग लखपति बन गये, कलाकार हो गये, कितनों ने ही यश प्राप्त किया, पर वह एक सामान्य व्यक्ति ही रह गया।

निर्लिप्त को लगा कि ऐसी हालत में ज़िन्दा रहना बेकार है। उसने अपने मन में कुछ संकल्प-सा किया और जंगल की तरफ़ निकल गया। अब जीवन और मौत में उसे कोई अन्तर महसूस नहीं हो रहा था। वह चाहता था कोई चीता या बाघ आये और उसे अपना शिकार बनाले। वह एक घने वृक्ष के नीचे से गुज़र रहा था कि उसकी मुलाक़ात एक साधु से होगयी। उस साधु ने निर्लिप्त से पूछा, "तुम कौन हो और खूँख़ार जन्तुओं से भरे इस जंगल में क्यों घूम रहे हो ?"

"स्वामी, मैं इस जीवन में कुछ कर नहीं पाया। मैं जीवन से विरक्त होकर अपने प्राण त्यागने के लिए यहाँ आया हूँ।"

साधु मुस्कराकर बोला, "तुम यह सोचकर दुखी हो कि जीवन में कुछ साध नहीं पाये। बात तो ठीक है। पर क्या तुमने कभी यह सोचा है कि जीवन में तुम साधना क्या चाहते थे ?"

निर्लिप्त ने कहा, "यह तो कभी नहीं सोचा !"

साधु ने कहा, "तुमने तीर का निशाना लगाया ही नहीं, फिर लक्ष्य-वेध न कर पाने की चिन्ता क्यों कर रहे हो ? यह तो मूर्खता है !"

साधु की बात सुनकर निर्लिप्त की आँखें खुल गयीं। वह शांत मन से अपने घर लौट आया। उसने फिर कभी इस बात की चिंता नहीं की कि उसने जीवन में कुछ नहीं साधा। उसने अपना एक आदर्श निश्चित किया और उसे ही साधने का प्रयत्न करने लगा।

पद की जिम्मेदारी

श्रीपुर रियासत में जमींदार के सलाहकार का पद ख़ाली हुआ था। गौरांग और गंभीर नाम के दो युवकों ने इस पद के लिए आवेदन-पत्र दिये और वे ज़मींदार के पास जाकर अपनी नियुक्ति के लिए प्रर्थना करने लगे।

जमींदार ने पहले गौरांग को अपने मंत्रणा-कक्ष में बुलाया और उससे पूछा, "मैं अगर तुम्हें इस पद की जिम्मेदारी दे दूँ तो क्या तुम्हें यक़ीन है कि तुम सारा कार्य बिना किसी प्रकार की त्रुटि के कर लोगे ?"

यह प्रश्न सुनकर गौरांग बिना किसी झिझक के बोला, "श्रीमान्, मैंने बीस वर्ष तक अनेक जमींदारों और जागीरदारों के यहाँ कार्य किया है। इन वर्षों में मैंने अपना दायित्व निभाने में नाम मात्र के लिए भी कोई भूल नहीं की। यही कारण है कि उन सब लोगों ने मेरी योग्यता की सराहनता करते हुए मुझे ये सब प्रमाण-पत्र दिये हैं।" यह कह कर गौरांग ने प्रमाण-पत्रों का एक बंडल जमींदार के हाथों में थमा दिया।

जमींदार ने उन सारे प्रमाण-पत्रों को अपनी बगल में बैठे दीवान को निरीक्षण के लिए दे दिया। गौरांग को बाहर प्रतीक्षा करने के लिए कह कर जमींदार ने गंभीर को बुला भेजा। उन्होंने गंभीर से भी वही प्रश्न किये जो गौरांग से किये थे। प्रश्न सुनकर गौरांग ने उत्तर दिया, "महानुभाव, बिना एकाध त्रुटि के तो किसी भी पद का दायित्व निभाना प्रायः असंभव-है। इसलिए मैं आपको इस प्रकार का कोई वचन नहीं दे सकता।"

जमींदार ने कहा, "ऐसी स्थिति में मैं आपको इतने ऊँचे पद पर कैसे नियुक्त कर सकता हूँ ?"

"क्षमा कीजिये ! अगर मेरे कार्य में कभी कोई भूल हो जाती है, तो मैं तुरंत उस भूल को

दिनेश शर्मा

सुधार भी सकता हूँ और फिर यथा संभव उस कार्य को ठीक ढंग से संपन्न करने की क्षमता भी रखता हूँ। जो लोग गलतियों से सबक सीखते हैं और अनुभव प्राप्त करते हैं, वे लोग भविष्य में अत्यन्त लाभकारी सिद्ध हो सकते हैं।" गंभीर ने जवाब दिया।

जमींदार ने गंभीर को दूसरे ही दिन काम पर लग जाने का आदेश-पत्र दे दिया।

जमींदार की बगल में बैठे दीवान को अपने मालिक का यह निर्णय विचित्र-सा लगा। उसने जमींदार से कहा, "अनेक लोगों ने गौरांग की योग्यता के विषय में प्रमाण-पत्र दिये हैं। उसने पहले जिन पदों पर भी काम किया है, उनका दायित्व पूरा करने में उससे एक भी गलती नहीं हुई है। ऐसे व्यक्ति को छोड़कर आपने गंभीर को यह पद दे दिया ?"

जमींदार बोला, "गौरांग कहता है कि किसी भी पद पर अपनी जिम्मेदारी निभाते वक्त उसने कोई गलती नहीं की है। हम इस बात पर कैसे विश्वास कर सकते हैं कि उसने बिना एक भी गलती के इतने लम्बे समय तक ऐसे दायित्वपूर्ण पदों पर काम किया ? वास्तव में होता यह है कि ऐसे पदों पर काम करने वाले लोग अपनी सारी जिम्मेदारी अपने सहायकों पर लाद देते हैं, इसलिए किसी भी गलती के जिम्मेदार भी वे सहायक हो जाते हैं, ये नहीं। बताओ, इस सम्बन्ध में तुम क्या कहना चाहते हो ?"

दीवान ने समझ लिया कि जमींदार के कथन में पर्याप्त सच्चाई है। वह बोला, "आप सच कहते हैं।"

"किसी भी पद की जिम्मेदारियों का निर्वाह करते हुए भूल होने की संभावना रहती ही है। इस सत्य को गंभीर जानता है, गौरांग नहीं। गंभीर में एक और विशेषता यह भी है कि वह

गलतियों को छिपाने की अपेक्षा, उन्हें सुधार लेना बेहतर समझता है। इसलिए मैंने सलाहकार के पद पर गंभीर को ही नियुक्त करने का निर्णय लिया है।" जमींदार ने कहा।

सलाहकार के पद पर कार्य करते हुए गंभीर ने अच्छा यश प्राप्त किया।

तेमिय

उस समय काशी राज्य पर ब्रह्मदत्त का शासन था। उनकी पटरानी चंद्रादेवी मद्रदेश की राजकुमारी थीं। कई वर्ष गुज़र गये, पर उनके कोई संतान न हुई।

राजा के निःसंतान और राज्य के उत्तराधिकरी-विहीन होने से प्रजा दुखी हुई। कुछ प्रमुख नागरिकों ने राजा के पास जाकर निवेदन किया कि पुत्र-प्राप्ति के लिए कुछ यज्ञ, व्रत आदि अनुष्ठान होने चाहिए।

प्रजा की प्रार्थना मानकर महारानी चंद्रादेवी ने अनेक व्रतों का आचरण किया। एक पूर्णिमा को उन्होंने निर्जल उपवास रखा और अपने मन में संकल्प लिया, "यदि मैं शीलवती हूं तो मेरे गर्भ से एक पुत्र का जन्म हो!"

देवराज इंद्र ने चंद्रादेवी की कामना पूर्ण करने का निश्चय कर लिया। उन्होंने मन में विचार किया कि ऐसी शीलवती रानी के गर्भ से किस जीव का जन्म संभव है! तभी उन्हें बोधिसत्व का स्मरण आया।

बोधिसत्व ने इसके पूर्व एक बार जन्म लेकर काशी राजा के रूप में बीस वर्ष तक शासन किया था। इन बीस वर्षों के अन्दर उनसे जो भी पाप-कर्म हुए थे, उनके प्रायश्चित स्वरूप उन्होंने अस्सी हज़ार वर्ष तक उष्णद नरक के दुखों का अनुभव किया था। पाप-क्षय होने पर वे फिर देवलोक में चले गये थे। जब देवलोक की अवधि समाप्त हुई, तो वे ऊर्ध्व लोकों में जाने के लिए प्रस्तुत हुए।

इसी समय देवराज इंद्र बोधिसत्व के पास आये और बोले, "हे बोधिसत्व, यदि तुम मानव-लोक में जाकर जन्म धारण कर लो, तो तुम्हें अपार पुण्य की प्राप्ति होगी। साथ ही तुम मानव-जाति का उद्धार भी कर सकोगे। काशीनरेश और उनकी पत्नी महारानी चंद्रादेवी पुत्र की कामना लेकर बहुत काल से अनेक व्रतों का आचरण कर रहे हैं। तुम उनके पुत्र के

रूप में जन्म धारण कर लो ।''

इंद्र के आग्रह पर बोधिसत्व ने अपनी सम्मति प्रदान की ।

बोधिसत्व ने जिस समय चंद्रादेवी के गर्भ में प्रवेश किया, उस समय उनके पाँच सौ अनुचर देवताओं ने भी काशी नरेश के परिजनों की पत्नियों के गर्भों में प्रवेश किया ।

समय पूर्ण होने पर बोधिसत्व ने अनेक शुभलक्षणों के साथ चंद्रादेवी के गर्भ से जन्म लिया । उसी दिन पाँच सौ अनुचर देवताओं ने भी जन्म लिया ।

राजा ने आदेश दिया कि वे सब बालक राजपुत्र के साथ पालित-पोषित होंगे और उनके अनुचर बन कर रहेंगे । राजपुत्र को दूध पिलाने के लिए चौंसठ धाइयों का प्रबंध किया गया ।

काशी राज्य में बड़ी धूमधाम से पुत्रजन्म का उत्सव मनाया गया । कार्यों के पूर्ण होने पर राजा अपनी पटरानी के पास जाकर बोले, ''देवी, मैं अत्यन्त प्रसन्न हूँ, तुम मुझसे कोई वर माँग लो !''

''समय आने पर आपसे निवेदन करूँगी ।'' रानी ने कहा ।

बालक का नामकरण 'तेमिय' किया गया । राजा ने ज्योतिषियों से राजकुमार तेमिय की जन्म कुंडली बनवायी, फिर पूछा, ''बालक की कुँडली में कोई दुष्टग्रह तो नहीं है ?''

ज्योतिषियों ने प्रसन्न भाव से कहा, ''महाराज, आपके पुत्र की जन्म कुंडली में किसी भी दुष्ट-ग्रह का प्रवेश नहीं है । आयु भी दीर्घ है ।''

राजकुमार तेमिय को एक माह का होने पर खूब सजाकर राजदरबार में ले जाया गया । राजा अपने पुत्र को गोद में लेकर खिलाने लगे । उसी समय चार डाकुओं को न्याय-निर्णय के लिए राजा के सम्मुख प्रस्तुत किया गया । राजा ने चारों डाकुओं के अभियोग सुने । फिर उनमें से एक को एक हज़ार कोड़े लगाने का आदेश दिया । दूसरे को आजीवन कारावास की सज़ा सुनायी । तीसरे को भालों से बींधने का आदेश दिया और चौथे को सूली पर चढ़ाने की सज़ा दी ।

बोधिसत्व अभी शिशु ही थे, पर उन्हें अपने

पूर्व जन्म का ज्ञान था। उन्होंने इस दृश्य को देखकर अपने मन में सोचा, "ओह, मेरे पिता राजा हैं, इसीलिए ये जान बूझकर नरक के भागी बन रहे हैं। मैंने भी कभी बीस वर्ष तक राज्य किया था। परिणाम स्वरूप मुझे अस्सी हज़ार वर्ष तक उष्णद नरक की यातना भोगनी पड़ी। फिर से मैंने राजारूपी इन डाकुओं के वंश में जन्म लिया है। मेरे पिता नहीं जानते कि वे स्वयं भी चोर हैं, इसीलिए वे इन डाकुओं को इतना कठोर दंड दे पाये हैं। भविष्य में अगर मैं भी राजा बन गया तो मुझे भी नरक भोगना पड़ेगा।

उस दिन से राजकुमार तेमिय इस चिंता में पड़ गया कि इस चौर्य वृत्तिवाले जीवन से कैसे मुक्ति पायी जाये। उसकी स्वर्णिम देह सूख गयी और वह चिंतामग्न रहने लगा।

तब उसे अपने पूर्वजन्म की माता दिखाई दी, वह बोली, "वत्स, डरो मत! अगर तुम इस पापपूर्ण जीवन से मुक्त रहना चाहते हो तो तुम गूंगे, बहरे, लंगड़े और पागल की तरह अभिनय करते हुए अपना समय बिताओ!"

तेमिय ने अपनी पूर्वमाता की चेतावनी का पालन करने का अपने मन में निश्चय कर लिया।

राजा के आदेशानुसार राजकुमार तेमिय के साथ ही अन्य पाँच सौ शिशुओं को रखा गया था। जब भी उन बच्चों को भूख लगती, वे दूध के लिए रोने लगते, पर तेमिय कभी न रोता। वह सोचता, "इस लोक में नरक भोगने की अपेक्षा भूख से तड़प कर मर जाना कई गुनाश्रेष्ठ है।"

धाइयों ने जाकर रानी से कहा कि राजकुमार कभी भी दूध के लिए नहीं रोते हैं। रानी ने यह बात राजा को बतायी। राजा ने ब्राह्मणों को बुलाकर उनसे सलाह माँगी।

ब्राह्मणों ने कहा, "बच्चे को दूध के लिए रुलाया क्यों जाये? ठीक समय पर दूध देने पर वह गटागट पी जायेगा।"

धाइयाँ ऐसा ही करने लगीं। कभी-कभी बच्चे की परीक्षा लेने के ख्याल से उसका दूध बन्द कर दिया जाता था, तब भी बच्चा नहीं रोता था। सबको बड़ा आश्चर्य होता। इसके

अलावा, वह अन्य बच्चों की तरह हाथ-पैर चलाकर नहीं खेलता था। न किलकारी मारता था। चुटकी बजाने पर भी वह कोई ध्यान न देता, मानो उसकी आवाज़ उसने सुनी ही न हो। इन सब बातों का कारण कोई कोशिश करके भी समझ नहीं पाया।

इसी तरह एक वर्ष बीत गया। एक दिन धाइयों ने बहुत से मिठाइयों के थाल बच्चों के बीच रख दिये और कहा, "तुम सब बालक इन्हें खाओ !" यह कहकर वे ओट में चली गयीं और जाँच करने लगीं कि देखें क्या होता है ! बाकी सब बच्चे मिठाइयों पर टूट पड़े। जो भी हाथ लगा, मुँह में रख लिया और जो दूसरों के हाथ में था, उस पर छीना झपटी करने लगे। पर राजकुमार तेमिय वैसा ही बैठा रहा, उसने किसी भी प्रकार की रुचि नहीं दिखायी। यह देख रानी चंद्रादेवी का दिल दहल उठा। उन्होंने थोड़ी सी मिठाई लाकर बच्चे के मुँह में रख दी और चुमकार कर कहा, "लो बेटा, यह तो खा लो !"

इस प्रकार पाँच साल बीत गये। पाँच वर्ष के बच्चे आग से डरने लग जाते हैं। राजा ने सोचा शायद आग को देखकर तेमिय डर जाये ! यह सोचकर उन्होंने बच्चों के लिए एक भारी झोंपड़ी बनवायी। उस पर ताड़ के पत्ते ढकवा दिये। सारे बच्चों को उस झोंपड़ी में रखकर और उनकी सुरक्षा के लिए सैंकड़ों सैनिक नियुक्त कर राजा ने उस झोंपड़ी में आग लगवा दी। आग देखते ही सबके सब बच्चे डर कर भाग गये, लेकिन तेमिय यह सोचकर निर्लिप्त बैठा रहा, "नरक में सड़ने की अपेक्षा इन शोलों में जलकर मर जाना कहीं श्रेष्ठ है !" जब आग की लपटें एक दम उसके क़रीब पहुँचने लगीं, तब सुरक्षा-सैनिक उसे बाहर उठाकर लाये।

तेमिय अब सात वर्ष का हो गया था। राजा ने सँपेरों को बुलाकर कुछ नागों की विष-ग्रन्थियाँ निकलवा दीं और फिर उन नागों के मुँह सिलवाकर उन्हें बच्चों के समीप छुड़वा दिया।

सारे बच्चे घबराकर भाग गये, पर तेमिय अपनी जगह से हिला भी नहीं। साँप उसके

शरीर पर लोटने लगे। उसके सिर पर फण फैलाकर नाचने लगे, फिर भी वह विचलित नहीं हुआ।

राजकुमार तेमिय के पैरों में कोई त्रुटि न थी, कान और मुख भी ठीक थे। फिर भी न वह हिलता-डुलता था, न किसी से बात करता था और न किसी की कोई बात सुनता ही था। सब परेशान होगये थे।

बच्चों के मनोरंजन के लिए नाटक का आयोजन हुआ, उसे देख सब बच्चे हँसने लगे, पर तेमिय गुमसुम बैठा रहा। एक नट तलवार लेकर नृत्य करता हुआ आया और गरज कर बोला, "राजकुमार कहाँ हैं ? मैं उनका सिर काट डालूँगा !" यह कह कर उसने तलवार उठाकर राजकुमार पर वार करने का अभिनय किया। बाकी बच्चे चीखकर भाग गये, लेकिन तेमिय थोड़ा भी विचलित नहीं हुआ। नट अपना अभिनय छोड़कर वहाँ से चला गया।

राजकुमार तेमिय के अन्दर चेतना लाने के कई प्रयत्न किये गये। उसके चारों तरफ़ अचानक अनेक शंख बजाये गये, ढफलियाँ भिनभिनायें।

कई दिन तक उसका मुँह नहीं धुलाया गया, उसे नहलाया नहीं गया कि उसे अपनी देह की दुर्गन्ध का भान हो। सब उसकी अवहेलना कर कहते, "राजकुमार, आप नहाते क्यों नहीं ? क्या आपके अन्दर स्वच्छ रहने तक की इच्छा नहीं है ?"

एक दिन राजकुमार तेमिय की चारपाई के नीचे आग जलाकर रखी गयी। आग की चिनगारियों से तेमिय के शरीर में फोले पड़ गये। तेमिय यह सोचकर अविचल बैठा रहा कि नरक के शोलों के ताप से तो ये शोले कहीं कम भयानक हैं।"

राजकुमार तो विचलित नहीं हुआ, लेकिन अब उसके माता-पिता विचलित हो उठे। उनका हृदय काँप उठा।

आखिर उन लोगों ने ये सारी परीक्षाएँ बन्द करवाकर अपने पुत्र से विनती की, "बेटा, हम अच्छी तरह जानते हैं कि तुम्हारे अन्दर कोई दोष नहीं है। हमने अनेक जप, तप, उपवास करके तुम्हें पुत्र रूप में पाया है। पर तुम मिट्टी खाये

साँप की भाँति निश्चल पड़े रहते हो। हमें बड़ा दुख और अपमान का अनुभव होता है। तुम उठा करो और साधारण इन्सान की तरह घूमा-फिरा करो !'' फिर भी कोई लाभ न हुआ ।

तेमिय अब सोलह साल का हो चुका था। कोई लूला-लंगड़ा, गूंगा-बहरा कुछ भी क्यों न हो, युवावस्था प्राप्त होने पर हृदय में कामनाएं जगती ही हैं। इसलिए राजकुमार को आकर्षित करने के लिए नर्तकियों को नियुक्त किया गया। माता-पिता ने सोचा, शायद स्त्री जाति का आकर्षण ही तेमिय पर कुछ प्रभाव डाल दे। राजा ने यह घोषणा भी कर दी कि ''जो नर्तकी राजकुमार को अपनी ओर आकर्षित कर पायेगी, उसे राजकुमार की पटरानी बना दिया जायेगा ।''

एक दिन तेमिय को गुलाब जल में स्नान कराकर रेशमी वस्त्र धारण करा कर सुन्दर कोमल शैया पर लिटाया गया ।

उस कक्ष में सर्वत्र इत्र, धूप, सुवास का प्रबन्ध किया गया। कई सुन्दर युवतियों ने वहाँ अपना नृत्य प्रस्तुत किया। उन सबने अपनी बातचीत, संगीतकला एवं नृत्यकला के द्वारा राजकुमार का मनोरंजन करने का प्रयत्न किया। पर राजकुमार ने यह सोचकर अपनी साँस रोक ली कि कहीं इन सबकी गंध उसे किसी दुष्परिणाम में न डाल दे। वह अचेत-सा होकर वहीं गिर गया ।

वे युवतियाँ घबरा गयीं और खिन्न मन से राजा के पास जाकर बोलीं, ''महाराज, राजकुमार मनुष्य नहीं, राक्षस हैं। हमने अनेक प्रकार के प्रयत्न करके उनको रिझाने की कोशिश की पर हमारे सारे प्रयत्न असफल हो गये। जैसे ही हम नाचती हुई उनके निकट पहुँचीं, वे पीले पड़कर गिर गये ।''

इस प्रकार सोलह वर्ष तक राजा, प्रजा, सारा समाज राजकुमार तेमिय की परीक्षाएं लेता रहा। फिर भी तेमिय का रहस्य किसी को ज्ञात न हो सका ।

(अगले अंक में समाप्त)

हमारे मन्दिर

अमरनाथ

एक दिन पार्वती ने शिव से पूछा, "परमेश्वर, मुझे कृपा कर बताइये कि आप मुण्ड माला क्यों धारण करते हैं ?" शिव ने मन्दहास करके कहा, "यह तो तुम्हारे पूर्व जन्म का मुण्ड ही है ।"

पार्वती शिव की बात सुनकर विस्मित हो उठीं और उन्होंने अपनी जिज्ञासा प्रकट करते हुए कहा, "आपको तो मृत्यु कभी आयी नहीं, फिर मैं कैसे मर गयी ?"

शिव ने पार्वती को जन्म और मृत्यु के रहस्यों का परिचय कराना चाहा । इस कार्य के लिए एक ऐसे प्रदेश की आवश्यकता थी, जहाँ अन्य प्राणी तो क्या, कृमि और कीटाणु तक न हों । शिव की आज्ञा से रुद्रगण दशों दिशाओं में ऐसे प्रदेश की खोज करने लगे ।

अन्त में उन्हें हिमालय की पर्वत-मालाओं में एक गुफा मिली। उसके समीप कोई प्राणी मात्र दिखाई नहीं दिया। रुद्रगणों से समाचार पाकर शिव और पार्वती उस घाटी में पहुँचे। वहाँ परमेश्वर शिव पार्वती को जन्म और मृत्यु के रहस्यों का उपदेश देने लगे।

एक दिन जब शिव उपदेश कर रहे थे तो पार्वती को नींद आगयी। शिव को ऐसा भान हुआ कि कोई और प्राणी कान देकर उनका उपदेश सुन रहा है। उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ और उन्होंने थपकी देकर पार्वती को जगाया और उस प्राणी की खोज में चारों तरफ़ दृष्टि दौड़ायी।

शिव-पार्वती जिस चट्टान पर बैठे हुए थे, उसमें एक छेद था। तुरन्त उसमें से एक तोता निकला और फुर्र से उड़कर चला गया। वास्तव में हुआ यह था कि उस छिद्र में अंडे के रूप में स्थित तोते ने पार्वती को दिये गये शिव के उपदेश के रहस्य को सुन लिया था।

वह तोता उड़ता चला गया और सुदूर प्रदेश में स्थित महर्षि व्यास की कुटी के सामने पहुँच गया। वहाँ महर्षि व्यास की पत्नी बाल सँवार रही थीं। वह तोता उनके अन्दर विलीन होगया। इसके बाद इसी तोते ने उनके गर्भ से जन्म लिया और शुकमुनि के रूप में प्रसिद्ध हुआ।

शिव ने पार्वती को जिस गुफा में जन्म और मृत्यु के रहस्य का उपदेश दिया था, वह एक पवित्र स्थल बन गया। एक दिन एक गड़रिया अपनी एक भेड़ की खोज में उधर निकल आया। उसने उस गुफा में हिमराशि से बने शिवलिंग को देखा। उसका हृदय प्रेम, भक्ति, श्रद्धा और शांति से भर गया। वह काश्मीर के राजा के पास गया और उसने उन्हें यह समाचार दिया।

काश्मीर का राजा अपने परिवार और परिचर के साथ उस स्थल पर पहुँचा। कुछ ऋषि-मुनिगण भी वहाँ विद्यमान थे। उन्होंने सारे जनसमाज को उस स्थल की पवित्रता का परिचय दिया और उसे उसी रूप में प्रकृति की रक्षा में छोड़ देने का आग्रह किया।

प्रतिवर्ष अगस्त के महीने में असंख्य यात्री इस गुफा से छियालीस किलोमीटर की दूरी पर स्थित पहलगाँव के पास एकत्रित होते हैं। इसके बाद काश्मीर के धर्मार्थसंघ के अधिपति के नेतृत्व में यह जनसमुदाय उस गुफा की ओर यात्रा आरम्भ करता है।

आश्चर्यजनक सौन्दर्य के आगार पर्वत एवं घाटियों को तथा झरनों एवं सरोवरों को पार करते यात्री पाँच दिन के बाद गुफ़ा के निकट पहुँच जाते हैं और शिवलिंग का दर्शन करते हैं।

इस गुफा में हिमराशि नैसर्गिक रूप से शिव लिंग का आकार धारण करती है। कहा जाता है कि सर्वप्रथम महर्षि भृगु ने इस लिंग के दर्शन किये थे। तब से असंख्य पीढ़ियां गुज़र गयीं, हजारों भक्त हर वर्ष इस पवित्र अमरनाथ क्षेत्र का दर्शन करते हैं।

दरबारी पेटू

जगदीश गंगापुर का निवासी था। वह अव्वल दर्जे का आलसी था और किसी भी काम को उत्साहपूर्वक नहीं करता था। वह अक्सर गाँव के भोलेभाले लोगों के बीच पहुँच जाता और अपनी डींगें मारता।

उन सीधे-सरल लोगों में मनोहर नाम का एक युवक भी था। एक दिन बात ही बात में उसने जगदीश से पूछा, "भाई, तुम यह बताओ कि तुममें क्या योग्यता है, जिस पर गर्व कर सको? सारे दिन पेड़ के नीचे पड़े मक्खियां मारा करते हो।"

"मनोहर, मैं तो आलसी हूँ, पर तुम तो दिन भर कड़ी मेहनत करते हो। मुझे बताओ, तुम एक बार में कितने अमरूद खा सकते हो?" जगदीश ने पूछा।

मनोहर ने कहा, "पंद्रह!"

"मैं चालीस खा सकता हूँ! जानते हो?" जगदीश ने बड़े घमंड से कहा।

मनोहर सीधा तो था ही, चकित होकर बोला, "खाओ तो सही, मैं भी देख लूँ?"

"तुम अमरूदों का प्रबंध कर लो, खाकर मैं दिखा दूँगा!" जगदीश ने कहा।

भोलाभाला मनोहर अपने साथियों के साथ जाकर चालीस अमरूद इकट्ठे कर लाया।

जगदीश पूरा पेटू था। उसने एक साथ चालीस अमरूद खा लिये। मनोहर ने कहा, "जगदीश, मुझे तो तुम पर दया आती है। तुममें इतना सारा खाना हजम करने की शक्ति है और तुम्हारी भूख भी बड़ी तगड़ी है। तुम्हें मेहनत करने की आदत नहीं। ऐसी स्थिति में तुम्हें खाने केलिए पैसा कहाँ से मिलेगा?"

"मैं बिना मेहनत के इतना खाना पचा जाता हूँ। अगर मैं मेहनत करूँगा तो मेरी भूख और पाचनशक्ति दोनों ही बढ़ जायेंगी। इसलिए मैं मेहनत से बचता हूँ।" मैं पेटुओं की स्पर्धा में विजयी होकर अपने गाँव का नाम रोशन करना

चाहता हूँ। अभ्यास करने के लिए मुझे हर रोज़ अधिक भोजन की ज़रूरत है। मेरे खाने की जिम्मेदारी अगर आप सब लोग अपने ऊपर ले लें, तो सारी समस्या हल हो जाये!" जगदीश ने प्रस्ताव रखा।

जगदीश ने स्पर्धा की बात इसलिए कही थी, क्यों कि पड़ोसी गाँव का जमींदार प्रतिवर्ष पेटुओं की प्रति योगिता चलाता था। उसमें जो विजयी होता, उसे साल भर वही खिलाता था। इस प्रकार पेटुओं की स्पर्धा में विजयी होकर जगदीश उस जमींदार का 'दरबारी पेटू' बनने का सपना देखने लगा था।

जगदीश की बातें सुनकर मनोहर गाँव के मुखिया चरणसिंह के घर पहुँचा और सारा वृत्तान्त सुनाकर बोला, "क्यों न हम कुछ दिन जगदीश के खान-पान की व्यवस्था करें! इससे वह हमारे गाँव का नाम ऊँचा करेगा!"

मुखिया चरण सिंह होशियार आदमी था। उसने भोलेभाले मनोहर की बातों से जगदीश की योजना को समझ लिया और उसे अच्छा सबक़ सिखाने का निश्चय किया।

कुछ दिनों पहले पड़ोसी जमींदार के यहाँ सुपुष्ट नाम का एक दरबारी पेटू था। उससे चरणसिंह की अच्छी जान-पहचान थी।

मुखिया चरणसिंह ने खबर देकर सुपुष्ट को अपने घर बुलवाया और उसे सारी बात समझा दी। इसके बाद उसने जगदीश को ख़बर दी। आने पर उससे पूछा, "मैंने सुना है कि तुम दरबारी पेटू की प्रतियोगिता में भाग लेना चाहते हो! अगर ऐसा है तो हम सब मिलकर तुम्हें पूरा सहयोग देंगे। लेकिन एक बार तुम्हारी सामर्थ्य की परीक्षा लेनी आवश्यक है। ये सुपुष्ट हैं। दो वर्ष पहले पेटुओं की प्रतियोगिता में विजयी होकर साल भर तक जमींदार के संरक्षण में रह चुके हैं। अगर तुम इन्हें खाने की प्रतियोगिता में हरा दोगे तो हमारा गाँव तुम्हें पेटुओं की प्रतियोगिता के लिए तैयार होने में पूरी मदद देगा।"

जगदीश ने यह शर्त तुरन्त स्वीकार कर ली और सुपुष्ट के साथ खाने की स्पर्धा में भाग लेने के लिए तैयार हो गया। इस पर सुपुष्ट ने कहा, "भाई, तुम तो देखने में कमज़ोर से लगते हो!

मुझे नहीं लगता कि तुम मेरे साथ स्पर्धा करने के लायक़ हो ।"

जगदीश रोष में आकर बोला, "मैं एक साथ चालीस अमरूद डकार गया हूँ। तुम्हें मेरी सामर्थ्य का क्या पता ?"

"कोई बात नहीं ! कल हम दोनों के बीच उड़द की दाल से बने बड़ों की प्रतियोगिता होगी। तुम उस समय जितने बड़े खाओगे, मैं उससे दस बड़े ज़्यादा खा जाऊँगा ।" सुपुष्ट ने चुनौती के स्वर में कहा ।

दूसरे दिन प्रतियोगिता का प्रबंध हुआ । सबसे पहले जगदीश ने बड़े खाने शुरू किये और मिनटों में दो सौ बड़े डकार गया। सब लोग उसके पेटूपन पर चकित रह गये ।

इसके बाद सुपुष्ट ने बड़े खाना शुरू किया। वह देखते ही देखते डेढ़ सौ बड़े खा गया। यह देख जगदीश घबरा गया। उसे अपनी जीत पर शंका होने लगी। उसने रसोइये को इशारा किया कि बड़े का परिमाण कुछ ज़्यादा कर दे ।

जगदीश सुपुष्ट को बड़े देता गया। सुपुष्ट आकार में बड़े उन बड़ों को भी आराम से खाता गया। जगदीश और भी घबरा गया और सुपुष्ट द्वारा खाये गये बड़ों की गिनती गलत करने लगा ।

सुपुष्ट कभी के दो सौ बड़े खा चुका था, पर जगदीश की गणना के अनुसार यह गिनती बड़ी देर में पूरी हुई। जगदीश समझ गया कि उसकी पराजय निश्चित है ।

पर प्रकट रूप में उसने गंभीर होकर सुपुष्ट से कहा, "तुम दस बड़े और खा लोगे, तभी विजयी माने जाओगे ।"
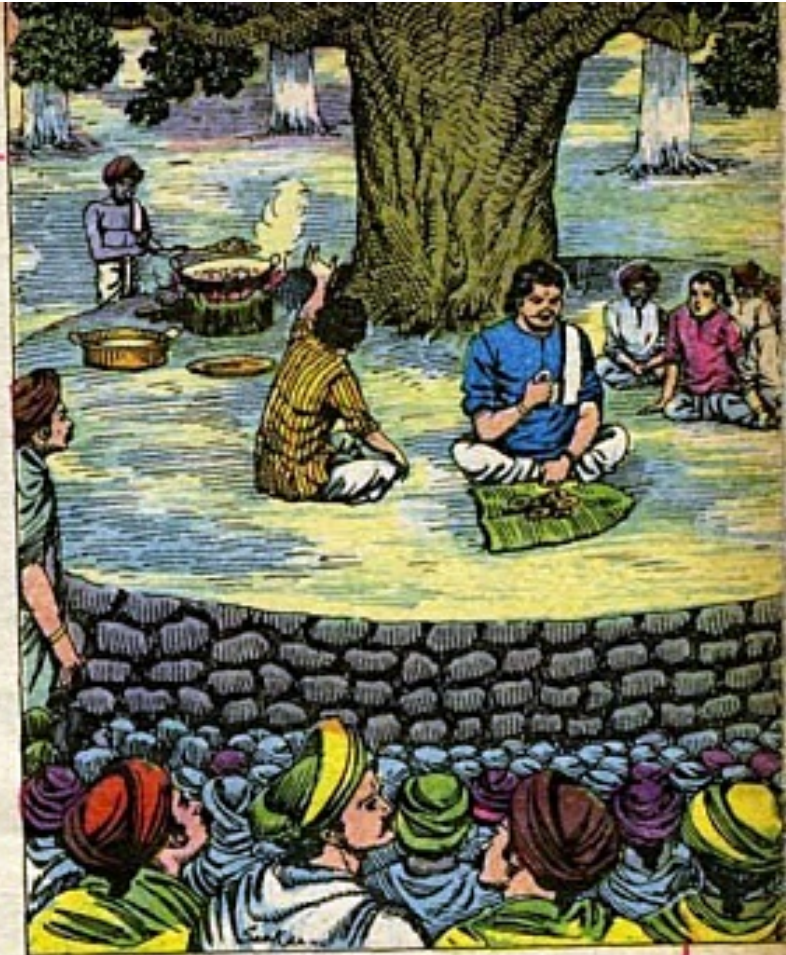
सुपुष्ट ने जगदीश की बात मान ली । जगदीश ने उसे बीस बड़े खिलाकर दस की गिनती की। सुपुष्ट ने जगदीश से पूछा, "अब तो मानते हो न, कि मैं प्रतियोगिता में विजयी हो गया हूँ ?"

"सब देख ही रहे हैं ! इसमें मेरे मानने, न मानने का सवाल ही कहाँ उठता है ?" जगदीश ने उदास स्वर में कहा ।

"वैसे कोई ख़ास बात नहीं ! हाँ, प्रतियोगिता की बात समाप्त हो जाये तो मैं फुरसत से घर में बैठकर सौ बड़े और खाना चाहूँगा ।" सुपुष्ट ने अपने मन की बात कही ।

जगदीश सुपुष्ट की खाने की क्षमता पर चकित रह गया और बोला, "इतना आहार खाने की इच्छा रखनेवाले को क्या करना चाहिए ? क्या यह उपाय मुझे बता सकते हो ?"

"मैं तो अपनी भूख के हिसाब से खाता हूँ। इसमें कोई उपाय की बात नहीं है । क्योंकि इतना सारा खाना खानेवाले का दिमाग़ कभी काम नहीं कर सकता ।" सुपुष्ट ने कहा ।

"इसका मतलब है कि तुम मुझे कोई सलाह नहीं दे सकोगे ?" जगदीश ने पूछा ।

"मैं तुम्हें केवल एक ही सलाह दे सकता हूँ कि तुम अपनी भूख को घटाने का कोई उपाय खोज निकालो, क्योंकि प्रतिदिन तुम्हें दो सौ बड़े खिलानेवाला कहीं नहीं मिलेगा ।" सुपुष्ट ने समझाया ।

"पर यह तो बताओ कि भूख कैसे घट सकती है ?" जगदीश ने सवाल किया ।

"आलसी आदमियों को भूख ज़्यादा लगती है । उनकी दृष्टि हमेशा खाने पर ही लगी रहती है । हर रोज़ कड़ी मेहनत करने से खाना भी ठीक से हजम हो जाता है । मैं हमेशा ही बहुत मेहनत करता हूँ, लेकिन मैंने जब भी कुछ दिनों के लिए श्रम छोड़ा है, मेरी भूख बढ़ गयी है ।" सुपुष्ट ने कहा ।

"क्या तुम सचमुच ही प्रतिदिन कड़ी मेहनत करते हो ?" जगदीश ने पूछा ।

"हाँ भाई, मेरी भूख घटाने का उपाय यही है । हाँ, जब खाने की प्रतियोगिता का कोई निमंत्रण आता है तो मैं एक हफ़्ता काम करना बंद कर देता हूँ । उसके बाद मेरे खाने की शक्ति सौ गुना बढ़ जाती है ।" सपुष्ट ने अपना पूरा रहस्य खोल दिया । जगदीश समझ गया कि आलसी व्यक्ति को जीवन में न सच्चा सुख मिलता है, न मान । वह यह भी समझ गया कि किसी इनसान को भूख की पीड़ा अधिक सताती है । चाहे कोई भी शौक क्यों न हो, श्रम से ही वह सार्थक होता है ।

धीरे-धीरे जगदीश ने अपने आलस्य का त्याग कर दिया और अपनी शारीरिक शक्ति को श्रम में लगाया ।

नीली टोपी

पश्चिमी तट पर पहाड़ी क्षेत्र में बीरमपुर नाम का एक गाँव था। वहीं का निवासी था बदरी मछुआरा। वह हर रोज़ अपनी नाव समुद्र में खोल देता और मछलियाँ पकड़ कर उनका व्यापार करता। यही उसके जीवन-निर्वाह का साधन था। लेकिन एक दिन उसकी नाव का तल्ला निकल गया और वह समुद्र पर मछलियाँ पकड़ने नहीं जा सका। उसने नयी नाव को बनाने के लिए लकड़ी लाने का विचार किया और एक दिन सुबह ही सुबह जंगल की तरफ़ निकल गया। जंगल के अन्दर बहुत दूर तक जाने पर भी उसे नाव के उपयुक्त लकड़ी न मिल सकी। वह कुछ और आगे बढ़ा कि सारे आसमान में बादल छागये और चारों तरफ़ अंधेरा फैल गया। वह इलाका उसका परिचित नहीं था, इसलिए उसने तुरन्त घर लौटना ठीक समझा।

बदरी मछुआरा उस अंधेरे में रास्ता भटक गया। बड़ी दूर तक वह पैदल चलता रहा। एक तरफ़ पहाड़ी जंगल, दूसरी तरफ़ गरजता हुआ समुद्र। चारों तरह गहरे अन्धकार का राज्य। बदरी आँखें फाड़-फाड़कर देखता, पर उसे कुछ भी दिखाई न देता। थोड़ी देर बाद बारिश भी होने लगी। बदरी पानी में भीगता हुआ, भूख की पीड़ा सहता हुआ यह सोचकर व्याकुल होने लगा कि पता नहीं, शायद रात भी इसी जंगल में बितानी पड़ेगी? तभी उसे कुछ दूर पर एक दिये की रोशनी दिखाई दी।

मछुआरे बदरी की जान में जान आयी। वह उस रोशनी की दिशा में बढ़ा और आख़िर वहाँ तक पहुँच ही गया। वह एक झोंपड़ी थी। बाँस के सींकचों से दीपक का प्रकाश बाहर आ रहा था। उसने दरवाजे पर दस्तक दी तो एक बूढ़े ने दरवाज़ा खोल दिया।

''बाबा, मैं रास्ता भटक गया हूँ। दिन भर का भूखा हूँ। थोड़ा भोजन और रात के विश्राम

२५ वर्ष पूर्व 'चन्दामामा' में 'डोंगी' शीर्षक से प्रकाशित कहानी

के लिए थोड़ी जगह दो !'' बदरी ने बूढे से विनती की ।

''अन्दर आ जाओ ! यहाँ से दस-बारह कोस की दूरी के अन्दर कोई बस्ती नहीं है !'' बूढ़े ने कहा ।

झोंपड़ी के अन्दर बूढ़े की पत्नी ख़ाना गरम कर रही थी । उसने बदरी से कोई बातचीत नहीं की और बूढ़े से भी कुछ न कहा । खाना गरम होने के बाद तीनों ने खाना खाया और अलग-अलग कोनों में पड़ रहे । बदरी ने आँखें तो ज़रूर बंद कर लीं, पर उसे नींद नहीं आयी । वह मन ही मन सोचने लगा, ''आख़िर ये बूढ़े लोग इस निर्जन प्रदेश में क्यों रहते हैं ? ये आपस में बात क्यों नहीं करते ? इन्हें भोजन कहाँ से मिलता है ? इनके रहस्य का पता लगाना चाहिए ।''

आधी रात हुई तो बूढ़ा धीरे से उठा । बिल्ली की तरह वह दबे पाँव कोने में रखी हुई एक पेटी के पास पहुँचा । उसने पेटी का ढक्कन खोला और उसके भीतर से नीले रंग की एक टोपी निकाली । उस टोपी को अपने सिर पर रख वह चिल्लाया, ''काश्मीरम् ! काश्मीरम् ।''

दूसरे ही क्षण वह जादू की तरह गायब हो गया । इसके बाद बूढ़ी उठी, वह भी दबे पाँव पेटी के पास गयी और उसके अन्दर से नीले रंग की एक टोपी निकाल कर सिर पर रखी और बूढ़े की तरह चिल्लायी, ''काश्मीरम् ! काश्मीरम्'' फिर क्या था, वह भी अदृश्य होगयी ।

बदरी यह दृश्य देखकर आश्चर्यचकित रह गया । बूढ़ों को इस तरह अदृश्य होता देख वह भी उठ खड़ा हुआ । पेटी के पास पहुँच कर उसने उसका ढक्कन खोला । उसके अन्दर नीले रंग की दो-तीन टोपियाँ और रखी हुई थीं । उसने उनमें से एक टोपी निकाली और उसे अपने सिर पर रखकर चिल्लाया, ''काश्मीरम् ! काश्मीरम् !''

दूसरे ही क्षण उसकी आँखें भारी हो गयीं । उसे लगा, उसके ऊपर से ज़ोर की आंधी गुज़र रही है । उसका शोर समाप्त होने पर उसकी आँखें खुलीं तो उसने अपने आपको एक राजमहल के भोजनालय में पाया । वे दोनों

बूढ़े-दम्पति राजा का बचा हुआ भोजन गठरियों में बाँध रहे थे। उन्होंने अपनी गठरियों में सोने के लोटे और गिलास भी रख लिये थे। मछुहारे बदरी को देखते ही उन्होंने नीली टोपियाँ सिर पर रख लीं और बड़ी जोर से चिल्लाये, "मन्दाग्नि पहाड़ ! मन्दाग्नि पहाड़ !" और उसी वक्त अदृश्य हो गये।

उनके चले जाने पर बदरी मछुआरा यह सोचकर निश्चिंत हुआ कि अब उसे रोकनेवाला कोई नहीं है। उसने खूब छककर खाना खाया और राजा की अंगूरी शराब की सुराही देख उस पर टूट पड़ा। कुछ ही देर में बेहोश होकर वह वहीं पर गिर पड़ा।

सुबह होने पर राजसेवकों ने मछुआरे को भोजनालय में पाया। उन्होंने उसके हथकड़ियां डालीं और राजा के सामने लेजाकर खड़ा कर दिया, फिर शिकायत की, "महाराज, हमें जिस डाकू की तलाश थी, वह मिल गया है। राजमहल में हर रोज़ जादू की तरह घुसने वाला डाकू यही है।"

"इतने भयानक डाकू का ज़िन्दा रहना उचित नहीं है। इसे एक खंभे से बाँधकर जिन्दा जला दो !" राजा ने आदेश दिया।

मछुआरे बदरी को वधस्थल पर ले जाया गया। वहाँ मज़बूत लकड़ी की एक ऊँची शहतीर गाड़ी गयी और उससे उस मछुआरे को बाँध दिया गया। इसके बाद चारों तरफ़ चिता बनाकर उसमें आग लगा दी गयी।

उस डाकू को देखने के लिए वहाँ भारी भीड़ इकट्ठा हुई थी। राज्य के छोटे-बड़े सभी आदमी वहाँ मौजूद थे। राजमहल के पहरेदारों की आँखों में धूल झोंककर चोरी करनेवाले डाकू को पकड़ने के लिए अनेक प्रयत्न किये गये थे। वह सबकी आँख बचाकर महल में घुसता, फिर उसी तरह बाहर भी निकल जाता। यह सबके लिए आश्चर्य का विषय हो गया था। लोग यहाँ तक सोचने लगे थे कि यह किसी भूत का चक्कर है। लेकिन वह भूत न होकर मनुष्य निकला और आज पकड़ा भी गया, यह समाचार मिलते ही दूर दूर से लोग उसे देखने दौड़ पड़े थे।

चिता में से उठ रहे शोले लपलपाते हुए

बदरी के निकट आने लगे। उसे पक्का विश्वास हो गया कि अब वह कुछ ही क्षणों का मेहमान है। इस विपदा में अचानक उसे नीले रंग की टोपी याद आगयी। उसने न्यायाधीश की तरफ़ हाथ जोड़ कर कहा, "महाशय, मेरी एक अन्तिम इच्छा है, कृपा कर उसे पूरा कर दीजिए। मेरी एक नीले रंग की टोपी है, उसे मेरे सिर पर रखवा दीजिए! वह मुझे प्राणों से भी प्यारी है। मैं चाहता हूँ, वह भी मेरे साथ भस्म हो जाये!"

न्यायाधीश ने मछुआरे की अन्तिम इच्छा स्वीकार कर ली। उनके आदेश से एक सैनिक आग से बचता हुआ चिता पर चढ़ा और नीले रंग की टोपी बदरी मछुआरे के सिर पर रख दी। बदरी तत्काल चिल्ला उठा, "मन्दाग्नि पहाड़! मन्दाग्नि पहाड़!" और वहाँ से उस स्तम्भ-सहित अदृश्य होगया। जनता को पक्का विश्वास हो गया कि यह डाकू भूत-प्रेत विद्या जानने वाला कोई जादूगर है।

मछुआरा बदरी 'मन्दाग्नि' पहाड़ पर पहुँचा। वह अब भी रस्सियों द्वारा स्तम्भ से बंधा हुआ था। उसने यह सोचकर चारों तरफ़ निगाह दौड़ायी कि उसके बन्धन खोलने के लिए शायद कोई दिख जाये। तभी उसकी दृष्टि पेड़ों की ओट से आते एक मनुष्य पर पड़ी।

"भाई! ओ भाई! मेरी इन रस्सियों को खोल दो, तुम्हारा बड़ा पुण्य होगा!" बदरी ने पास आगये व्यक्ति से विनती की।

"तुम इस निर्जन प्रदेश में इस स्तम्भ से कैसे बंध गये? बताओ, किसने तुम्हें बाँधा? यह शहतीर तो देवदारु वृक्ष के तने की तरह सुन्दर और मज़बूत है!" आगन्तुक ने अपना आश्चर्य प्रकट किया।

"हाँ भाई, नाव के लिए बढ़िया लकड़ी की ज़रूरत थी। इसलिए मैं इसे ले आया। काश्मीर के महाराजा ने स्वयं यह स्तम्भ मुझे पुरस्कार में दिया है।" मछुआरे ने कहा।

आगन्तुक ने बदरी की रस्सियां खोल दीं और बदरी देवदारु के उस स्तम्भ को कंधे पर रखकर घर की ओर चल पड़ा।

वाक्चातुरी

प्रेमपुर गाँव में रामचौधरी नाम का एक संपन्न किसान रहता था। एक बार वह किसी काम से शहर में गया। जब उसका काम पूरा होगया तो लौटते वक्त वह एक दूकान के सामने रुका। दूकान के मालिक ने उसका स्वागत किया और अन्दर आने का आग्रह किया। रामचौधरी के अन्दर आने पर दूकानदार ने उसे एक शाल दिखाकर कहा, "यह बात अलग है कि आप इस शाल को न ख़रीदें, लेकिन यह शाल बड़ी अनोखी चीज़ है। इसकी क़ीमत भी अधिक नहीं। अगर आप इसे ओढ़कर बाज़ार में निकलेंगे, तो सब आपको गाँव का जमींदार ही समझेंगे। अगर आपको भरोसा न हो तो आप एक बार इसे ओढ़कर बाज़ार में घूम आइये!" यह कह कर दूकानदार ने बड़े आग्रह से जबरन वह शाल रामचौधरी के कंधों पर उढ़वा दी।

रामचौधरी संकोच में पड़ गया। फिर भी दूकानदार का मान रखने के लिए वह शाल ओढ़कर इधर-उधर घूम आया। कुछ देर बाद जब वह वापस दूकान में प्रवेश करने लगा, तो दूकान मालिक ने उसे न पहचानने का स्वांग रचते हुए कहा, "वाह, आप यह अनोखा शाल ओढ़े हुए हैं, इसलिए अवश्य ही आप पास के गाँव के जमींदार होंगे। आप आये, मेरा अहोभाग्य है! कहिये, क्या सेवा करूँ?"

रामचौधरी दूकानदार की वाक्चातुरी पर मुग्ध हो गया। उसने हँसकर उस शाल की क़ीमत चुका दी।
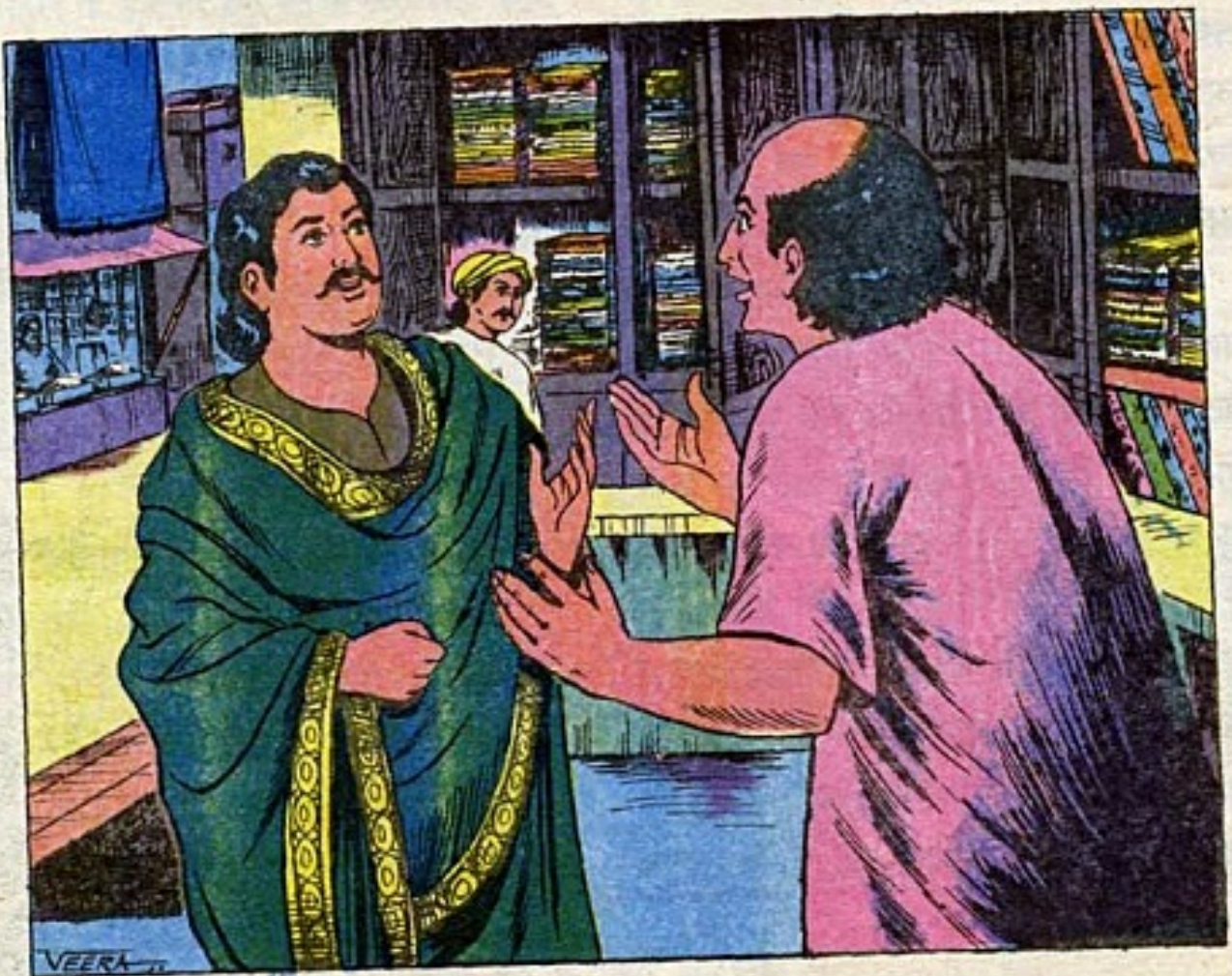
ककड़ियों का सौदागर

अमीर शहर के सुलतान का नाम अजीज़ मोहम्मद था । एक दिन वह शिकार खेलने के लिए गया । जंगल के रास्ते में उसे एक किसान दिखाई दिया । वह एक गधे की पीठ पर बड़ी सी गठरी लादे हुए उसे हाँकता हुआ चला आ रहा था । सुलतान ने अपना घोड़ा रोका और किसान से पूछा, ''भाईजान, इस गठरी के अन्दर क्या है ?''

''बड़े मियाँ, ये ककड़ियां हैं । मेरे खेत की पहली फसल हैं ये ! इस बार समय से पहले ही पैदावार होगयी है । इसलिए इन्हें सुलतान के पास बेचने निकला हूँ । मैंने सुना है कि हमारे सुलतान बड़े दिलदार हैं । मुझे पूरा भरोसा है कि वे मेरी पहली पैदावार की कद्र करेंगे और इसका अच्छा मूल्य देंगे ।'' किसान ने जवाब दिया । इसके पहले उसने सुलतान को कभी देखा न था, इसलिए वह जान नहीं पाया कि वह सुलतान से ही बात कर रहा है ।

''तुम सुलतान से इन ककड़ियों की कितनी क़ीमत पाना चाहते हो ?'' सुलतान ने पूछा ।

''कम से कम वे एक हज़ार दीनार तो देंगे ही !'' किसान ने उत्तर दिया ।

''अगर सुलतान को यह क़ीमत ज़्यादा लगे तो ?'' अजीज़ मोहम्मद ने फिर सवाल किया ।

''तब मैं उनसे पाँच सौ दीनार माँग लूँगा ।'' किसान बोला ।

''अगर वे इस रक़म को भी ज़्यादा कहें तो !''

''तीन सौ माँग लूँगा !''

''यह भी ज़्यादा बतला दें तो !''

''तो मैं एक सौ दीनार की माँग करूँगा ।''

''अगर यह भी उन्हें ज़्यादा लगे ?''

''पचास माँग लूँगा !''

''इसे भी ज़्यादा कहें तो ?''

''तीस माँग लूँगा ।''

''इसके भी ज़्यादा कहने पर ?''

'अरब की रातों' से एक कहानी

"मैं अपने गधे को उनके सिंहासन की ओर हाँक कर भाग जाऊँगा।" किसान ने कहा।

किसान की बात पर सुलतान अजीज़ ठहाका मारकर हँस पड़ा और किसान के लिए रास्ता छोड़ दिया। इसके बाद सुलतान ने शिकार खेलने का कार्यक्रम रद्द कर दिया और दूसरे रास्ते से अपने महल को लौट आया। अजीज़ मोहम्मद ने उसी वक्त अपने पहरेदारों को बुलाकर हुक्म दिया, "सुनो, मुझसे मिलने के लिए एक किसान अपने गधे के साथ यहाँ आयेगा। तुम उसे रोकना मत और सीधे मेरे पास अन्दर भेज देना!"

एक घंटे बाद किसान गधे को हाँकता हुआ राजमहल के द्वार पर आ पहुँचा और वहाँ पहरा दे रहे सिपाहियों से सुलतान के दर्शन करने की इच्छा प्रकट की। सबने सुलतान के आदेश का पालन किया और किसान को गधे के साथ अन्दर जाने दिया।

सुलतान ने तब तक अपनी पोशाक बदल ली थी और वह महल के अहाते में बैठा हुआ किसान का इन्तज़ार कर रहा था। किसान शाही वेश में सुलतान को पहचान नहीं पाया। उसने ककड़ियों का गट्ठर उठाया और बड़े अदब के साथ सुलतान के सामने जा खड़ा हुआ।

"लगता है तुम मेरे लिए कोई चीज़ लाये हो, क्या है भला?" सुलतान ने पूछा।

"हुज़ूर, मेहरबान हों। मैं आपके लिए अपने खेत की पहली फसल ककड़ियां लाया हूँ।" किसान ने उत्तर दिया।

"वाह! पर यह तो बताओ, तुम्हें मेरी इस

मेहरबान का कितना मूल्य चाहिए ?" सुलतान ने पूछा ।

"एक हज़ार दीनार !" किसान ने कहा ।

"यह तो बहुत ज़्यादा है !" सुलतान ने कहा ।

"तो हुजूर, पाँच सौ दीनार देने की मेहरबान करें ।"

"यह भी बहुत ज़्यादा है !"

"तीन सौ दीनार ?"

"यह भी ज़्यादा है !"

"एक सौ !"

"यह भी ज़्यादा है !"

"पचास !"

"यह भी अधिक है !"

"तीस !"

"यह भी ज़्यादा है !"

"हुज़ूर, रास्ते में मुझे एक पापी का चेहरा देखना पड़ा, उसी का यह बुरा नतीजा है। तीस से कम दीनारों में मैं अपनी ककड़ियाँ नहीं बेचना चाहता।" किसान ने साफ़ कह दिया।

सुलतान खिल खिला कर हँस पड़ा, पर उसने कोई जवाब नहीं दिया। सुलतान की हँसी सुनकर किसान ने सुलतान के चेहरे को गौर से देखा। वह समझ गया कि रास्ते में जिस आदमी से मुलाक़ात हुई थी, वे खुद सुलतान ही थे।

"हुज़ूर, मुझे मेहरबानी करके तुरन्त तीस दीनार दिलवा दीजिए, वरना आप जानते ही हैं कि मेरा गधा महल के अहाते में ही बंधा हुआ है।" किसान ने कहा।

सुलतान की हँसी रोके न रुक रही थी। वह हँसते-हँसते लोटपोट हो गया। इसके बाद उसने अपने खजांची को बुलाकर आदेश दिया, "तुम इस किसान को एक हज़ार दीनार गिन कर दे दो ! इसके बाद पाँच सौ, तीन सौ, एक सौ, पचास और फिर तीस दीनार दे दो !"

एक गठरी ककड़ियों का मूल्य उन्नीस सौ अस्सी दीनार ! इतनी रक़म पाकर किसान अवाक् रह गया। उसने सुलतान की हज़ार बार बन्दगी की और फिर अपने गधे पर दीनारों की गठरी लाद कर घर लौट गया।

शिव पुराण

माता पार्वती की सलाह मानकर लक्ष्मी गणाधिपति ने भगवान विष्णु के पास जाकर निवेदन किया कि उसके प्रति कैसा अन्याय हुआ है ! गणाधिपति ने विनम्र स्वर में पूछा, "भगवान्, क्या मैं कुमार स्वामी से स्पर्धा करके पृथ्वी की परिक्रमा कर सकता हूँ ? कुमार स्वामी तो अपने मयूर वाहन पर यहाँ से जा चुके हैं !"

विष्णु ने गणाधिपति को समझाया, "वत्स, तुम चिन्ता न करो ! तुम पाँच लाख बार शिव-पंचाक्षरी मंत्र का जाप करके अगर पार्वती और परमेश्वर की तीन बार परिक्रमा कर लोगे तो तुम्हें पृथ्वी की परिक्रमा और तीर्थयात्रा का फल एक साथ मिल जायेगा ।"

लक्ष्मी गणपति ने स्नान किया और एक स्थान पर कुशांसन लगाकर बैठ गये । उन्होंने बड़े भक्तिभाव से शिव-पंचाक्षरी मंत्र का जप आरंभ कर दिया ।

इस बीच कुमारस्वामी ने अपने मयूर वाहन पर काफ़ी दूरी तय कर ली थी और अब वे प्रथम तीर्थ के निकट पहुँच गये थे। वे अभी दूर ही थे कि उन्होंने देखा कि लक्ष्मी गणपति स्नान करके तीर्थ से निकल रहे हैं। कुमारस्वामी ने निकट जाकर देखा तो उन्हें चूहे के पैरों के चिन्ह दीख पड़े ।

कुमारस्वामी ने उस तीर्थ में स्नान करने वाले लोगों से पूछा, "भद्रजनो, क्या यहाँ पर बड़ी तोंदवाला कोई जन चूहे पर सवार होकर थोड़ी देर पहले यहाँ आया था ? क्या वह स्नान करके चला गया ?"

"जी हाँ, वे अभी-अभी यहाँ से चले हैं। देखो, दूर पर अब भी दिखाई दे रहे हैं। वे तो महान पुण्यात्मा हैं। हम सबको एक-एक स्वर्णमुद्रा दान करके गये हैं।" तीर्थयात्रियों ने उत्तर दिया।

"वाह, इस नाटे, बड़ी तोंदवाले ने क्या काम किया है ? यहाँ पर स्नान में समय नष्ट नहीं करना चाहिए। मैं अगले तीर्थ में स्नान करूँगा।" यह विचार कर कुमार स्वामी अगले क्षेत्र के लिए चल पड़े। लेकिन वहाँ पहुँचते ही कुमारस्वामी को यह स्पष्ट मालूम हो गया कि लक्ष्मी गणपति उसी वक्त उस तीर्थ में स्नान करके चले गये हैं।

सभी तीर्थों में कुमारस्वामी को यही अनुभव हुआ। उन्होंने किसी भी तीर्थ में स्नान नहीं किया और पृथ्वी की परिक्रमा किये बिना कैलास को लौट आये।

इस बीच लक्ष्मी गणपति ने पाँच लाख बार शिव-पंचाक्षरी का जाप कर पार्वती और परमेश्वर की तीन बार परिक्रमा की और उनके आगे हाथ जोड़कर विनयपूर्वक खड़े होगये।

सभा में सब लोग कानाफूसी करने लगे, "वाह ! देखिए तो ये लक्ष्मी गणपति पृथ्वी की परिक्रमा किये बिना गणाधिपत्य प्राप्त करना चाहते हैं !

तभी कुमारस्वामी भी लौट आये और विनीत स्वर में पार्वती-परमेश्वर से बोले, "मैं सचमुच गणाधिपत्य पाने के योग्य नहीं हूं आप लोग लक्ष्मी गणपति को ही गणाधिपत्य का पद सौंप दीजिए !"

शिव-सभा में उपस्थित सब लोगों तथा पार्वती और परमेश्वर को भी बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने कुमारस्वामी से पूछा, "तुम्हारे कथन का अभिप्राय क्या है ?"

"मैं पृथ्वी के सभी क्षेत्रों में गया, पर मैंने किसी भी तीर्थ में स्नान नहीं किया। क्योंकि प्रत्येक तीर्थ में ये लक्ष्मी गणपति मुझे अपने से पहले ही स्नान करके वहाँ से निकलते हुए दिखाई पड़े। तीर्थयात्रियों ने भी मुझे यही बताया। यह गणपति मुझसे कहीं अधिक शक्तिशाली हैं। रुद्रगणों के नेतृत्व-पद के लिए यही योग्य अधिकारी हैं।" कुमार स्वामी ने उत्तर
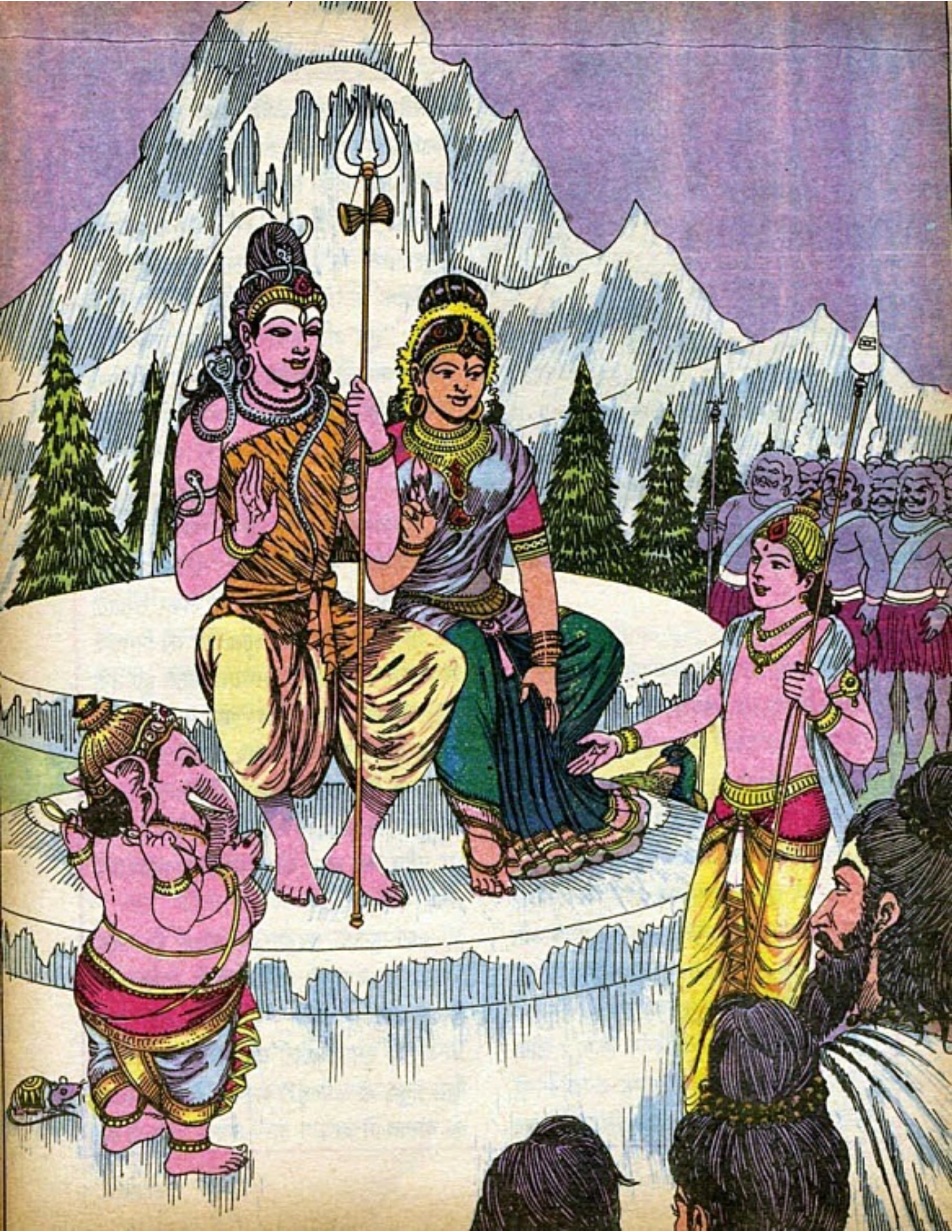
दिया ।

सभासदों ने शिव पंचाक्षरी के प्रभाव को समझ लिया और सर्वसम्मति से सबने लक्ष्मी गणपति को रुद्रगणों का अधिपति स्वीकार कर लिया ।

अब गणाधिपति के रूप में उनके अभिषेक के लिए आवश्यक आयोजन आरंभ हो गया ।

रुद्रगण तीव्र गति से गये और पवित्र नदियों तथा सात समुद्रों का जल ले आये । प्रमथ और भूतगणों ने जाकर गरुड़, गन्धर्व, किन्नर, किंपुरुष, नाग और भूलोकवासियों को निमंत्रण दिया । बृहस्पति ने मुहूर्त-निर्णय किया । ठीक समय पर लक्ष्मी गणपति तथा उनकी पत्नी जयलक्ष्मी को नवरत्नखचित सिंहासन पर आसीन किया गया और समस्त गणों पर उन्हें आधिपत्य-पद प्रदान कर पार्वती और परमेश्वर ने उनका अभिषेक किया ।

छोटे भाईयों के रूप में खड़े सभी गणपतियों पर भी उनका प्रभुत्व हुआ । अभिषेक के उपरान्त शिव-पार्वती गणपति से बोले, "तुम और तुम्हारे भाई तीनों लोकों पर शासन कर लो । जो भी तुम्हारी याद करें, पूजा करें, तुम्हारे लिए तपस्या करें, तुम उनकी सहायता करते हुए उनके सभी कार्य सफल बनाओ !"

तारकासुर का अन्त तो हो चुका था । इस बीच उसकी पत्नी तारकाक्ष, कमलाक्ष तथा विद्युन्माली—इन तीनों पुत्रों को लेकर रसातल को भाग गयी और वहाँ शुक्राचार्य की निगरानी में समस्त विद्याओं का अभ्यास कराते हुए उन्हें पाल-पोसकर बड़ा करने लगी ।

जब तीनों पुत्र वयस्क हुए तो उन्हें ज्ञान हुआ कि उनके पिता का वध कैसे और किसने किया है ! इस का प्रतिकार करने केलिए वे मेरु पर्वत पर पहुँच कर ब्रह्मा को लक्ष्य कर कठोर तप करने लगे ।

ब्रह्मा उनकी तपस्या पर प्रसन्न हुए और प्रत्यक्ष होकर उनसे बोले, "पुत्रो, तुम्हें क्या वरदान चाहिए ?"

"देव, ऐसा रथ जो वास्तव में रथ न हो, ऐसा धनुष जो वास्तव में धनुष न हो, ऐसा बाण जो वास्तव में बाण न हो—उसके प्रहार से ही

हम मरें, अन्यथा हमारी मृत्यु न हो। इस वरदान का हम पर अनुग्रह कीजिए। साथ ही हमें समस्त प्रकार की विद्याएँ, तेज, बल, ऐश्वर्य, त्याग, सुख-वैभव, भोग, शिवभक्ति, सोना, चांदी और लोहे से निर्मित नगर दीजिए!" तारकाक्ष, कमलाक्ष और विद्युन्माली ने ब्रह्मा से निवेदन किया।

ब्रह्मा ने 'तथास्तु' कहा और उनके लिए नगर-निर्माण करने का कार्य विश्वकर्म को सौंप वे अदृश्य होगये।

विश्वकर्म ने सुवर्ण, रजत और लौह से तीन नगरों का निर्माण किया और उन्हें तारकासुर के तीनों पुत्रों को दे दिया। वे तीनों पुर ही त्रिपुर कहलाये। उन नगरों को स्वेच्छा गमन प्राप्त था। वे आसमान में टिके रहते थे और भवन, उपवन, सरोवर, धन-धान्य और वैभव से परिपूर्ण थे। सुवर्ण-निर्मित पुर में तारकाक्ष, रजतनिर्मित पुर में कमलाक्ष और लौहनिर्मित पुर में विद्युन्माली का निवास था। तारक के ये पुत्र तीनों लोकों में स्वच्छंद घूमा करते थे और त्रिपुरासुर कहलाते थे।

उन त्रिपुरासुरों को जीतना इंद्र आदि देवताओं के लिए संभव न था। इसलिए इंद्र सहित सब देवगण ब्रह्मा के पास पहुँचे और हाथ जोड़ कर बोले, "भगवान्, त्रिपुरासुर हमें अनेक प्रकार से सता रहे हैं। उनके नगर हमारे नगरों के भवनों पर उतर कर उन्हें ध्वस्त करते हैं। आप हमारी रक्षा कीजिए"
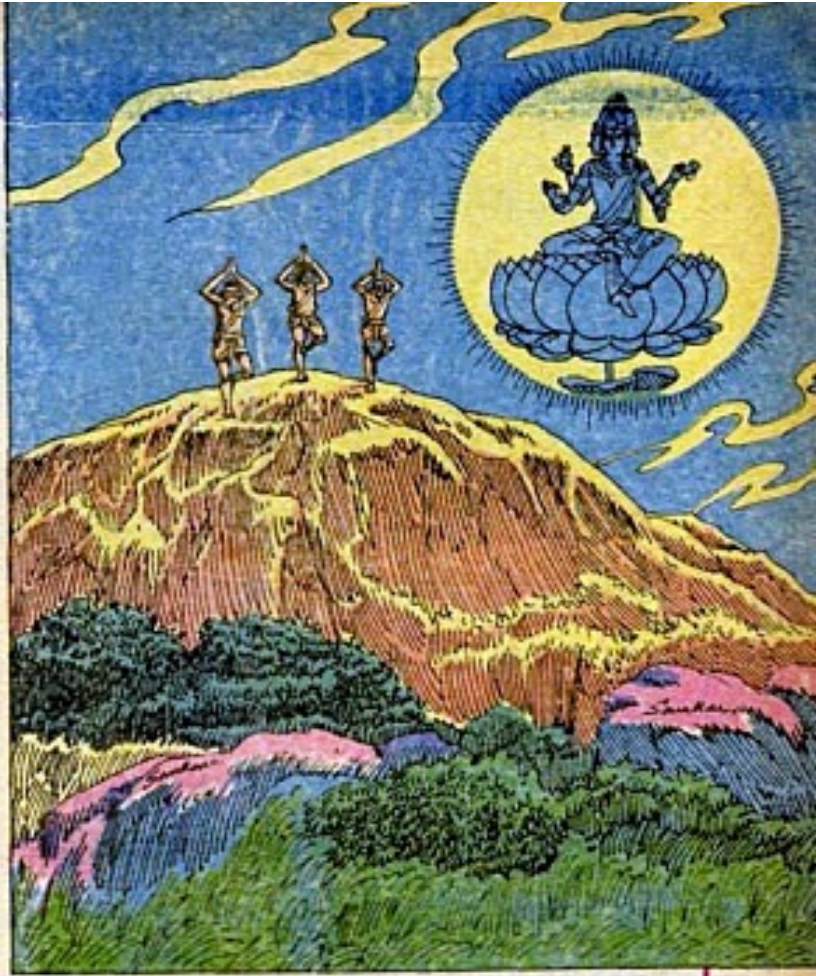
"त्रिपुरासुरों की मृत्यु आसान नहीं है। हम लोग अभी शिव के पास जाकर उनसे निवेदन करेंगे।" ब्रह्म ने कहा और समस्त देवसमूह के साथ भगवान शिव के पास पहुँचे।

शिव ने उनके मुख से सारा वृत्तान्त सुना और कहा, "मैं त्रिपुरासुरों का वध नहीं करूँगा। मैं तुम्हें अपना आधा तेज प्रदान करूँगा, तुम्हीं लोग उनका वध करना!"

शिव ने ब्रह्मा को स्मरण दिलाया, "आपने ही त्रिपुरासुरों को ऐसे अमोघ वरदान दिये हैं। अब आप हमारे तेज को स्वीकार कर उनका वध कीजिए!"

ब्रह्मा बोले, "परमेश्वर, ऐसा रथ चाहिए जो रथ न हो, ऐसा धनुष चाहिए जो धनुष न हो,

ऐसा बाण चाहिए जो बाण न हो, तभी वे तीनों राक्षस मर सकते हैं ! आप ही उनका नाश कर सकते हैं ।"

तब शिव ने पृथ्वी को रथ के रूप में, वेदों को रथ के अश्वों के रूप में, सूर्य और चंद्र को रथ के चक्रों के रूप में, मेरुपर्वत को धनुष के रूप में, आदिशेष को प्रत्यंचा के रूप में तथा विष्णुमूर्ति को नारायणास्त्र बनाकर त्रिपुरों पर प्रहार किया । उसी क्षण वे तीनों पुर त्रिपुरासुरों-सहित एक साथ राख होकर पृथ्वी पर गिर गये ।

त्रिपुरासुरों के नाश होने पर जलन्धर नाम का एक और दैत्य प्रकट हुआ और वह समस्त लोकों को सताने लगा । जलन्धर का वास्तविक नाम शूकर था । वह हिरण्यकश्यप के दसवें पुत्र अग्निजिह्व का पुत्र था । उसने भी ब्रह्म को लक्ष्य कर कठोर तपस्या की थी और उनसे ऐसा वर प्राप्त किया था कि उसकी मृत्यु देवगण, राक्षसगण, नाग, मानव के द्वारा न हो तथा वह पानी के अन्दर निवास कर सके ।

ब्रह्म से वर प्राप्त करके उसने अष्ट दिक्पालों को पराजित किया, इंद्र को स्वर्ग से निष्कासित किया और स्वर्गसहित तीनों लोकों पर शासन करने लगा ।

जलन्धर से पराजित होकर शिव कैलास से और विष्णु वैकुंठ से भाग निकले और मानसरोवर में छिप गये । वहाँ पर दोनों ने विमर्श किया और परब्रह्म को लक्ष्य कर तपस्या की ।

शिव और विष्णु की अभूत पूर्व तपस्या पर मुग्ध होकर परब्रह्म प्रत्यक्ष हुए । उन्होंने शिव को त्रिशूल और विष्णु को चक्र प्रदान कर कहा, "आप परस्पर एक-दूसरे के आयुध का विनिमय कर जलन्धर का संहार करें !" और अदृश्य होगये ।

परब्रह्म के द्वारा जलन्धर के संहार का उपाय जानकर शिव और विष्णु ने प्रसन्न होकर अपने आयुधों का विनिमय किया और जलन्धर का वध करने के अवसर की प्रतीक्षा करने लगे ।

नटखट डाइनें

शेषाचार्य नौकरी की तलाश में शहर गया था। काफी टकराने के बाद भी जब उसका काम नहीं बना तो वह निराश होकर वापस लौट आया। उसे देखते ही उसकी बूढ़ी दादी बोली, "बेटा शेष, तुम आगये। मैं पिछले एक सप्ताह से तुम्हारी बड़ी राह देख रही थी। चार-पाँच दिन से मेरी तबीयत ठीक नहीं चल रही। कल सुबह तुम्हारी ममेरी बहन आदिलक्ष्मी की शादी है। बहुत कम समय रह गया है। तुम उसकी शादी में हो आओ !"

दादी की बात से शेषाचार्य चौंक उठा। आदिलक्ष्मी की शादी की तारीख़ वह कैसे भूल गया ? यह तो आश्चर्य की बात है ! वह उसकी बड़ी प्यारी बहन है। बचपन से ही दोनों साथ-साथ खेलकर बड़े हुए हैं।

"दादी, अगर तुम याद न दिलातीं तो कैसी भूल हो जाती ! मैं अभी इसी वक्त मामाजी के गाँव की तरफ़ रवाना होता हूँ।" शेषाचार्य बोला

"अरे इस वक्त ! आधी रात के समय ?" दादी ने कुछ घबराकर कहा।

"दादी, रात तो नाम भर की है। फूलों जैसी चांदनी बाहर छिटक रही है। नहर के किनारे होकर जाऊँगा तो दो घंटे के अन्दर मामाजी के घर के अन्दर होऊँगा। तुम चिंता न करो।" कहकर शेषाचार्य बहन की शादी में शामिल होने के लिए निकल पड़ा।

वह शीघ्र ही नहर के किनारे पहुँच गया और बड़े-बड़े डग भरता हुआ चलने लगा। अभी डेढ़ घंटा भी न बीता था कि मामाजी का गाँव आ पहुँचा। अब उसे नहर का किनारा छोड़ एक ताड़ के बगीचे के बीच की पगडंडी से होकर गाँव के अन्दर पहुँचना था।

शेषाचार्य ने ताड़ के बगीचे में प्रवेश किया। अभी वह कुछ ही दूर चला था कि एक पेड़ की ओट से दो डाइनें सामने आयीं और उसके रास्ते को रोककर खड़ी हो गयीं।

यमुना दत्त

शेषाचार्य सिर से पैर तक काँप उठा। यह देख एक डाइन खिल-खिला कर जोर से हंस पड़ी और व्यंग पूर्वक बोली, "क्यों जी, तुम वेशभूषा से तो बड़े साहसी और पराक्रमी जान पड़ते हो ! फिर तीर की चोट खाये पक्षी की तरह काँप क्यों रहे हो ? बताओ, इस आधीरात कहाँ जा रहे हो ?"

"आदिलक्ष्मी की शादी में !" शेषाचार्य काँपता हुआ बोला ।

शादी की बात सुनकर डाइनें एक-दूसरे का चेहरा देख हँस पड़ीं और उछल-कूद करती हुई बोलीं, "देखो, हमारी नज़र में सब बराबर हैं— आदिलक्ष्मी की शादी हो या अनन्त-लक्ष्मी की। पर असली बात यह है कि शादी में हम भी चलेंगी ।"

शेषाचार्य कुछ संभल कर बोला, "अगर तुम्हें मैं अपने साथ ले गया तो मामाजी मेरी चमड़ी उधेड़ डालेंगे ।"

"और अगर हमें तुम अपने साथ न ले गये तो हम अभी तुम्हारी चमड़ी उधेड़ डालेंगी ।" डाइनों ने धमकी दी ।

शेषाचार्य समझ गया कि इन डाइनों से पिंड छुड़ाना असंभव है। वह बोला, "अभी तुम्हारे हाथों से चमड़ी उधड़वाने के बदले तो यही बेहतर होगा कि मैं आदिलक्ष्मी की शादी देख लूँ और बाद में मामाजी से अपनी चमड़ी उधड़वाऊँ। पर क्या ऐसा हो सकता है कि तुम लुक-छिपकर मेरे साथ चलो ? मामाजी को इस बात का पता न लगे कि मैं तुम दोनों को अपने साथ लाया हूँ ।"

"यह सारी समस्या तुम हम पर छोड़ दो ! बस तुम चले चलो !" डाइनों ने जोर डालकर कहा ।

शेषाचार्य चल पड़ा। डाइनें फिर उसे दिखाई न दीं। पर जब वह अपने मामा के घर के पास पहुँचा तो देखता क्या है कि दोनों डाइनें रेशमी साड़ियों और गहनों से सजी-धजी शादी के पंडाल में से होकर घर के अन्दर प्रवेश कर रही हैं ।

इस दृश्य को देख शेषाचार्य की कंपकंपी छूट गयी। पंडाल पार कर जैसे ही उसने घर की ड्योढ़ी में कदम रखा, उसके मामा सामने आ

गये। शेषाचार्य को देखकर बोले, "क्या बात है शेष ? काँप क्यों रहे हो ? मैं शादी के काम में फँसा हुआ हूँ। तुम्हारी तबीयत ख़राब जान पड़ती है। तुम बगल के कमरे में जाकर आराम करो, मैं अभी वैद्य को बुलवाता हूँ।"

शेषाचार्य उसी वक्त बगल के कमरे में जाकर लेट गया। इस बीच डाइनों ने अपनी शरारतें शुरू कर दीं।

वधूपक्ष के लोगों ने वरपक्ष के लोगों को ठहरने के लिए सामने का ही एक मकान दिया था।

तभी एक डाइन ने वर की माँ का रूप धरा और वधू के घर में घुस गयी।

अपनी होनेवाली समधिन को सामने देख आदिलक्ष्मी की माँ जया बोली, "आओ बहन ! आओ !"

"तुम देहज में हमें कैसी भेंटें और उपहार आदि देनेवाली हो, यह देखने आयी हूँ।" वर की माँ सुभाषिनी का वेश धरकर आयी हुई डाइन ने कहा।

पास में ही बड़े-बड़े टोकरों में लड्डू, पेड़े, जलेबी और छाक आदि रखे थे। जया ने उन सब चीज़ों को सुभाषिनी को दिखा दिया।

सुभाषिनी बनी डाइन ने एक जलेबी चखकर कहा, "जलेबी तो तुम्हारी बेटी के रंग जैसी है। पुराने गुड़ से बनवायी है, क्या बात है ?"

समधिन के मुख से ये शब्द सुनकर आदिलक्ष्मी और उसकी मां का दिल कसक उठा।

इसके बाद उस डाइन ने अन्य मिठाइयों की

भी आलोचना की। फिर बोली, "दो टोकरों में भात और मालपुए भी भरवा देना।"

आदिलक्ष्मी की मां जया ने चकित होकर पूछा, "बहन, ऐसी भी क्या जल्दी है? अगर सारा सामान अभी से भरवा दूँगी तो कल तक बासी हो जायेगा।"

"हमारे घर की बहुएँ बासी चीज़ें ज्यादा पसन्द करती हैं। लड्डुओं के बासी पड़ने में दस दिन और लग जायेंगे। तब तक तुम्हारी लड़की भात और मालपुए खायेगी।" समधिन बनी डाइन ने कहा।

आदिलक्ष्मी गौरी पूजन के लिए तैयार हो रही थी। उसने ये बातें सुनीं तो उसे लगा कि उसका जी मिचला रहा है। वह चुपचाप पिछवाड़े की तरफ़ गयी और वहाँ जाकर वमन कर दिया।

आदिलक्ष्मी की माँ जया बेटी को इस तरह पिछवाड़े की तरफ़ जाते देख उसके पीछे-पीछे गयी। इस बीच डाइन अपना रूप बदल कर कमरे से निकल गयी।

आदिलक्ष्मी ने ठंडे पानी से अपना मुँह धोया, फिर माँ से बोली, "माँ, मैं मरती मर जाऊँगी, पर यह शादी नहीं करूँगी।"

बेटी की बात सुन जया का दिमाग चकरा गया। वह पति से बात करने के लिए बाहर की तरफ़ दौड़ी।

अब दूसरी डाइन ने अपना काम शुरू किया। वह वरपक्ष के जनवासे में पहुँची। क्योंकि विवाह का सारा प्रबन्ध कन्या पक्ष के लोग कर रहे थे, इसलिए वर पक्ष के लोग विश्राम कर रहे थे। वर सुरेंद्र अकेला छत पर लेटा हुआ मच्छरों के हमले से परेशान हो रहा था।

डाइन ने वधू का रूप धरा और हाथ में पंखा लेकर सुरेंद्र के समीप ही शैया पर बैठ गयी।

सुरेंद्र ने भयभीत और चकित होकर पूछा, "तुम यहाँ क्यों आयीं? कोई देखेगा तो क्या कहेगा? सब हँसेंगे।"

"मैं उन सबके बराबर हँस सकती हूँ। यहाँ तुम मच्छरों से परेशान हो, इसलिए पंखा झलने आयी हूँ। हमारे गाँव के मच्छर ततैयों को भी भगा सकते हैं, इतने भयानक हैं!" यह

कहकर डाइन पंखे से सुरेंद्र के मच्छर उड़ाने लगी। एक मच्छर सुरेंद्र के हाथ पर आ बैठा तो डाइन ने पंखे को बड़ी ज़ोर से सुरेंद्र के हाथ पर दे मारा ।

सुरेंद्र 'उफ़ !' कहकर चुप रह गया। पर डाइन को चैन कहाँ ? वह 'इधर एक मच्छर !' 'उधर एक मच्छर !' कहती हुई पंखे से अंधाधुंध सुरेंद्र को पीटने लगी ।

सुरेंद्र तो वर था । उसकी सहनशीलता जवाब दे गयी। उसने वधू बनी डाइन के हाथ से पंखा छीना और कहा, "अब तुम यहाँ से तुरन्त चली जाओ ।"

डाइन अपनी आँखें पोंछने का अभिनय करती हुई बोली, "तुम्हें मच्छरों से बचाने के लिए मैं तुम्हें पंखे से मार रही हूँ, तब तो तुम यों नाराज़ हो रहे हो ! अगर कल शादी के बाद मैं सचमुच तुम्हें मार बैठूँ तो न मालूम तुम कितना नाराज़ होओगे ?"

"क्या तुम शादी के बाद मुझे मारोगी ?" सुरेंद्र ने आश्चर्य और क्रोध में भर कर पूछा।

"तुम्हारी रसोई अगर मुझे अच्छी न लगी तो क्यों न मारूँगी ?" डाइन बोली ।

"क्या मुझे रसोई बनानी पड़ेगी ?" सुरेंद्र आपे से बाहर हो गया ।

"क्या तुम सिर्फ़ बरतन साफ़ करके रहना चाहते हो ? यह सब नहीं चलेगा । घर के आँगन में पानी छिड़कना, कपड़े धोना—इन सबके अलावा बाकी सारे छोटे-मोटे काम तुम्हीं को करने पडेंगे ।" डाइन ने साफ़-साफ़ कह दिया ।

सुरेंद्र फट से खड़ा हो गया और बोला, "तब तो तुम्हें पति नहीं, नौकर चाहिए ।"

वह दौड़ा-दौड़ा अपने माता-पिता के पास गया और सारा वृत्तान्त सुनाकर बोला, "वह तो डाइन है । मैं उसके साथ कभी शादी नहीं करूँगा ।"

कुछ ही मिनटों में यह ख़बर आग की तरह सारे गाँव में फैल गयी कि वर और वधू दोनों ही इस शादी के लिए तैयार नहीं हैं। शादी में आये हुए रिश्तेदारों ने दोनों पक्ष के लोगों को इकट्ठा किया और डाँटकर पूछा, "यह क्या मज़ाक है ? क्या तुम इसे कठपुतली का खेल समझते हो ? बताओ, इस शादी को तुम किस वजह से रद्द

करना चाहते हो ?''

कन्या पक्ष के लोगों ने अपनी सफाई देते हुए कहा, ''दूल्हे की माँ एक दम चंडी है, डाइन है। उसने अभी कुछ देर पहले हमारे यहाँ आकर हमारा अपमान किया है।''

''लेकिन मैं तो कन्या पक्ष के मकान में गयी ही नहीं। तब से यहीं जनवासे में हूँ।'' सुरेंद्र की माँ सुभाषिनी सकते में आगयी।

वर पक्ष के लोगों ने अपनी दलील में कहा, ''दुलहिन तो एक दम राक्षसी है। वह अपने होने वाले पति से अभी-अभी यह कह कर गयी है कि वह उससे घर के सारे काम काज करवायेगी और ज़रूरत पड़ी तो उसे पीटने से भी नहीं चूकेगी।''

यह सुनकर आदिलक्ष्मी की दशा ख़राब हो गयी। कोई भी किसी की बात न समझ सका। सब आपस में झगड़ा करने लगे। डाइनें यह सब देख खिलखिलाकर हँसने लगीं। उन्होंने जो नाटक रचा था, वह पूरी तरह सफल हुआ था।

इसी बीच आदिलक्ष्मी के पिता को शेषाचार्य की याद आयी। वे तुरन्त उसके कमरे में गये तो देखा वह पसीने में नहाया पड़ा है। उन्होंने चिल्लाकर कहा, ''अरे उधर कोई है ? जल्दी से जाकर हनुमान शर्मा को बुला लाओ !''

हनुमान शर्मा उस गाँव का प्रसिद्ध वैद्य था। 'हनुमान' यह नाम सुनते ही रेशमी साड़ी और गहनों से लदी दोनों डाइनें ज़ोर से चीख उठीं और काली बिल्लियों का रूप धरकर अंधेरे में भाग गयीं। यह दृश्य देख कुछ लोगों के अचरज का ठिकाना न रहा। कुछ लोग हँसते-हँसते लोट-पोट हो गये।

डाइनों के भाग जाने से शेषाचार्य की तबीयत भी कुछ संभली। वह उठ कर बाहर आया और सारी बात बतायी। सब समझ गये कि सारी मुसीबत और झंझट का कारण वे दोनों नटखट डाइनें हैं।

सब शान्त-प्रसन्नचित्त से अपने-अपने काम में लगे। शुभमुहूर्त में आदिअक्ष्मी की शादी धूम-धाम से संपन्न हो गयी।

अफ्रीका के हिरन

अफ्रका के हिरन अन्य देशों के हिरनों की अपेक्षा आकार में बड़े माने जाते हैं। वहाँ रेस के घोड़ों की तरह इन हिरनों को घरों में या अन्य पशु-गृहों में पालतू जानवरों की तरह पाला जाता है ।

विशाल काया, वक्राकार तेज़ सींग, चेहरे तथा कंधों पर उठे हुए केश, अयाल, बैल की सी पूँछवाले अफ्रीका के ये हिरन फूल-पत्ते खाकर जीवित रहते हैं। आयु के अनुसार इनका शारीरिक रंग भी बदलता जाता है । साधारणतया इनका शरीर नीले रंग से मिश्रित बैंगनी रंग का होता है ।

अफ्रीका के रेगिस्तानों, पहाड़ी प्रदेशों में भी दिखाई देनेवाले ये हिरन हरी घास वाले मैदानों में अधिक संख्या में पाये जाते हैं ।

ये हिरन सारा दिन जंगलों में बिताते हैं। रातों में तथा सुबह बड़े तड़के ये मैदानों में आते हैं और वहाँ के सरोवरों से पानी पीकर चले जाते हैं। ये हिरन पचास और सौ तक की संख्या में दल बाँधकर जीवन बिताते हैं। नर हिरन कभी अकेले तो कभी झुंड में भी घूमते हैं ।

इन हिरनों का शरीर भारी होता है इसलिए अन्य जानवरों की तुलना में ये कुछ आलसी से प्रतीत होते हैं। फिर भी ज़रूरत पड़ने पर ये हवा में ऊँची छलांगे मार दौड़ सकते हैं। अफ्रीका के छोटे-छोटे जंगलों में घुड़दौड़ के घोड़ों की भाँति झाड़-झंखाड़, झुरमुट, पानी की कुलियों को पार करते इन हिरनों की दौड़ का दृश्य बड़ा मनमोहक होता है ।

सामान्यतः कायर प्रतीत होनेवाले ये हिरन विपदा के समय अपनी संतान की रक्षा के लिए अपने तेज़ सींगों को हथियारों के काम में लाते हैं और अपने दुश्मन के साथ जमकर लड़ाई करते हैं। ये हिरन दो वर्ष में एक बार बच्चा देते हैं, इसलिए इनकी वृद्धि ज़्यादा नहीं होती ।

एक समय था जब अफ्रीका के दक्षिणी-पूर्व प्रदेशों में ये हिरन बहुत बड़ी संख्या में दिखाई देते थे, लेकिन अब इन हिरनों की संख्या दिन पर दिन घटती जा रही है ।

फोटो-परिचयोक्ति-प्रतियोगिता :: पुरस्कार ५०)

पुरस्कृत परिचयोक्तियां जनवरी १९८६ के अंक में प्रकाशित की जायेंगी।

M. Natarajan M Natarajan

★ उपर्युक्त फोटो की सही परिचयोक्तियाँ एक शब्द या छोटे वाक्य में हों। ★ नवम्बर १० तक परिचयोक्तियाँ प्राप्त होनी चाहिए। ★ अत्युत्तम परिचयोक्ति को (दोनों परिचयोक्तियों को मिलाकर) ५० रु. का पुरस्कार दिया जाएगा। ★ दोनों परिचयोक्तियाँ केवल कार्ड पर लिखकर निम्न पते पर भेजें: चन्दामामा फोटो-परिचयोक्ति-प्रतियोगिता, मद्रास-२६

सितम्बर के फोटो - परिणाम

प्रथम फोटो : नहाने से नाराज़!

द्वितीय फोटो : खुश है, पा आतिशबाज़ !!

प्रेषक : जुगल किशोर श्रीवास्तव, जवाहर गंज, डबरा, जिला - ग्वालियर (म. प्र.)

"क्या आप जानते हैं ?" के उत्तर

१. कृष्णा नदी २. यमुना ३. ताप्ती ४. कोसी नदी ५. चम्बल नदी।

Printed by B.V. REDDI at Prasad Process Private Ltd., 188 N.S.K. Salai, Madras 600 026 (India) and Published by B. VISWANATHA REDDI on behalf of CHANDAMAMA PUBLICATIONS, Chandamama Buildings, Vadapalani, Madras 600 026 (India). Controlling Editor: NAGI REDDI.

चन्दामामा

मनोरंजक एवं ज्ञानवर्द्धक उत्कृष्ट मासिक पत्र

* चन्दामामा हमारे पुराण व साहित्य के श्रेष्ठ रत्नों को क्रमबद्ध रूप में प्रदान करता है ।
* व्यापक दृष्टिकोण को लेकर विश्व साहित्य की अद्भुत काव्य कथाओं को सरल भाषा में प्रस्तुत करता है ।
* मृदुहास्य, ज्ञानवर्द्धक तथा मनोरंजक सुन्दर कहानियों द्वारा पाठकों को आकृष्ट करता है ।
* हमारी पुराण गाथाओं को प्रामाणिक रूप में परिचय करता है ।
* हास्यपूर्ण प्रसंगों तथा व्यावहारिक ज्ञान प्रदान करने वाले शीर्षकों के साथ पाठकों का उत्साह वर्द्धन करता है ।
* चन्दामामा केवल आपके जीवन में ही नहीं बल्कि आपके बन्धु एवं मित्रों के जीवन में भी रचनात्मक पात्र का व्यवहार करता है । इसलिए आप अपने घनिष्ट मित्रों को चन्दामामा भेंट कीजिए ! उपहार में दीजिए !

बच्चों के लिए प्रस्तुत चन्दामामा, पाठकों में नवयौवन का उत्साह एवं आनन्द प्रदान करता है ।

तेरह भाषाओं में प्रकाशित चन्दामामा का साप किसी भी भाषा का ग्राहक बन सकते हैं !

तेलुगु, तमिल, हिन्दी, अंग्रेज़ी, असामी, बंगाली, गुजराती, कन्नड, मलयालम, मराठी, उडिया, पंजाबी और संस्कृत ।

वार्षिक चन्दा: रु. ३०-००

आप किस भाषा का चन्दामामा चाहते हैं, इसका उल्लेख करते हुए निम्न लिखित पते पर अपना चन्दा भेजिए:

डाल्टन एजेन्सीस

चन्दामामा बिल्डिंग्स,

वडपलनी, मद्रास-६०० ०२६.

स्वाद का गोला जीभ से बोला "... मुझसे चिपको,
मुझसे लिपटो, मुझपे टूटो,
मुझको लूटो. जीभ घुमाके,
जीभ फिराके, चारों ओर से चाट लो
मुझको. मैं अलबेली पॉप हूं लॉली. बाहर मेरे
कैरेमल निराली, भीतर कॅडबरिज़ डेरी
मिल्क चॉकलेट असली. जीभ को चैन न दूं मैं इक पल,
मुंह में देर तक मचाऊं हलचल. तो झटपट
आओ, स्वाद से मेरे ल-ल-ल लिपट जाओ..."
MR. POPS
Cadbury's
CHOCOLATE ECLAIR POP
नयी
कॅडबरिज़
चॉकलेट
एक्लेयर पॉप्स
म-म-मतवाली, स्वाद की लंबी सैर कराने वाली पॉप लॉली!
L HCP EP 1 2116 HI

CHANDAMAMA [Hindi] NOVEMBER 1985 Regd. No, M. 5452